

सिद्धभक्ति

(कविवर संतलालजी कृत सिद्धचक्र विधान की
पूजन की जयमालाओं का विवेचन)

पृष्ठभूमि

मंगलाचरण

(दोहा)

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान ।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान ॥

सम्यग्दृष्टि भव्य जीव इन्द्र पद, चक्रवर्ती पद एवं तीर्थकर पद प्राप्त कर अन्त में सिद्धपद को प्राप्त करते हैं ह इसप्रकार सम्यक्त्व की महिमा बताते हुए आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं ह

(बसंततिलका)

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं

राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।

धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं

लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्याः ॥^१

अमाप है महिमा जिसकी ह ऐसे देवेन्द्रचक्र को, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा पूजनीय हैं चरण जिनके ह ऐसे चक्रवर्ती के चक्ररत्न को और सम्पूर्ण लोक को नीचे कर दिया है जिसने ह ऐसे तीर्थकर के धर्मचक्र को; प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव अन्त में जिनभक्ति से सिद्धचक्र को प्राप्त करता है, सिद्धों के समूह में सम्मिलित हो जाता है ।

देखो, अपार महिमावाले देवेन्द्रों के देवेन्द्रचक्र, चक्रवर्तियों के राजेन्द्रचक्र, यहाँ तक कि तीर्थकरों के धर्मचक्र को पाकर भी एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ता है; सिद्धचक्र को प्राप्त कर उसे कभी भी छोड़ना नहीं पड़ता । एक प्रकार से उक्त तीनों चक्र तो अनित्य हैं,

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, छन्द ४१

क्षणभंगुर हैं, सदा रहनेवाले नहीं हैं; किन्तु सिद्धचक्र तो नित्य ही है; क्योंकि अब वह कभी भी छूटनेवाला नहीं है।

यह तो हमने बालबोध पाठमालाओं में ही पढ़ लिया था कि जो जीव एक बार सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेते हैं, मुक्त हो जाते हैं; वे जीव फिर कभी भी संसार में लौटकर नहीं आते। अनन्त काल तक सिद्धदशा में ही रहते हैं।

चक्र का अर्थ समूह होता है। सिद्धचक्र माने सिद्धों का समूह।

आचार्य पद्मनन्दिकृत सिद्धपूजन की जयमाला की निम्नांकित पंक्ति ध्यान देने योग्य है ह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह

उक्त पंक्ति में समागत सुसिद्धसमूह का अर्थ भी सिद्धचक्र ही है। अतः उक्त पूजन भी सिद्धचक्र की ही पूजन है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि चक्राकार (गोलाकार) सिद्धशिला में विराजमान विशुद्ध सिद्धों का समुदाय ही सिद्धचक्र है।

विधान माने विस्तार। किसी प्रकरण का भेद-प्रभेदपूर्वक विस्तार से कथन करना ही विधान है। इसप्रकार सिद्धों का भेद-प्रभेदपूर्वक विस्तार से कथन होने से यह समस्त सिद्धों की पूजन ही सिद्धचक्र पूजन विधान है।

मण्डल का अर्थ भी एक प्रकार से चक्र ही है; अतः सिद्धचक्र मण्डल विधान पूजन लिखने की आवश्यकता नहीं है; सिद्धचक्र पूजन विधान मात्र इतना ही पर्याप्त है।

प्रसीद का अर्थ है प्रसन्न होना। इसप्रकार सिद्धपूजन की उक्त पंक्ति का अर्थ हुआ ह हे विशुद्ध सुसिद्ध सिद्धचक्र (सभी सिद्ध भगवान) हम पर प्रसन्न होवो।

प्रसीद शब्द का अर्थ समझ में न आने के कारण कुछ लोग प्रसीद के स्थान पर प्रसिद्ध बोलने लगे हैं। वे इसप्रकार बोलते हैं कि प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्ध समूह। उनका यह बोलना ठीक नहीं है।

देवेन्द्रचक्र भी सौधर्मादि देवेन्द्रों के परिकर का ही नाम है। चक्रवर्ती

का चक्ररत्न भी उसका परिकर ही है और तीर्थकरों का धर्मचक्र तो गोलाकार उनका समवशरण है ही।

हम सबकी बुद्धि में यह जम गया है कि चक्र एक गोलाकार वस्तु का ही नाम है। कुंभकार का चक्र भी गोलाकार है, बैलगाड़ी के चक्र की भी यही स्थिति है। आवागमन की क्रान्ति में गोलाकार चक्र का बहुत बड़ा योगदान है। चक्र की खोज से आवागमन की रफ्तार बढ़ गई है।

यह भी एक अद्भुत संयोग है कि ढाई द्वीप भी गोलाकार है। जितना बड़ा और जैसे आकार वाला ढाई द्वीप है; उतनी बड़ी और वैसे ही आकार की सिद्धशिला है। इसप्रकार ढाई द्वीप और सिद्धशिला ह दोनों ही ४५ लाख योजन के विस्तार के हैं।

यह तो हम सब जानते ही हैं कि जो व्यक्ति जहाँ से, जिस क्षेत्र से और जिस आकार में मोक्ष जाता है; वह सिद्धशिला में भी ठीक उसके ऊपर उसी आकार में अनन्तकाल तक के लिए ही विराजमान रहता है।

कहते हैं कि सिद्धशिला में कहीं एक इंच भी जगह खाली नहीं है। इसका तो स्पष्ट ही यह अर्थ हुआ कि एक प्रकार से सम्पूर्ण ढाई द्वीप ही सिद्धक्षेत्र है। तात्पर्य यह है कि जमीन से तो जीव मोक्ष गये ही हैं; समुद्र के जल से भी अनन्त सिद्ध हुए हैं; अन्यथा सिद्धशिला में समुद्रों वाला स्थान खाली रहना चाहिए।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि अनन्त सिद्धों के समूह का नाम ही सिद्धचक्र है और उनके गुणों का स्मरण करते हुए विस्तार से उनका गुणगान करना, पूजन करना ही सिद्धचक्र पूजन विधान है।

कविवर संतलालजी कृत यह सिद्धचक्र विधान अध्यात्मरस से भरपूर एक भक्तिकाव्य है। जहाँ भी अवकाश मिला, वहाँ उन्होंने सिद्धों के गुणगान में कोई कसर नहीं छोड़ी।

आठ पूजनों की आठ जयमालाओं में उन्होंने भक्तिगंगा के प्रवाह को इसप्रकार प्रवाहित किया है कि भक्तों का मन आंदोलित हो उठता है।

इस कृति में भी उन्हीं जयमालाओं के भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा। ●

पहली पूजन की जयमाला

प्रथम पूजा की जयमाला में यह बताया गया है कि यह आत्मा परमात्मा किसप्रकार बनता है। प्रथम गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव किसप्रकार आत्मसाधना करके सिद्धपद प्राप्त करता है।

पूरी जयमाला में महाभारत युद्ध के सांगरूपक के माध्यम से यह बताया गया है कि करणानुयोग के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने की विधि क्या है; इस आत्मा ने कर्मों पर किसप्रकार विजय प्राप्त कर सिद्धदशा को पाया है। प्रारम्भिक दोहे में ही कहा गया है कि ह

(दोहा)

जग आरत भारत महा, गारत करि जय पाय ।

विजय आरती तिन कहूँ, पुरुषारथ गुणगाय ॥

उक्त दोहे की प्रथम पंक्ति में जो **भारत महा** शब्द है, उनका स्थान परिवर्तन कर दो तो **महाभारत** हो जायेगा। महाभारत शब्द आज महायुद्ध का प्रतीक बन गया है।

इस दोहे में कहा गया है कि हे सिद्धभगवान ! सम्पूर्ण जगत महादुःखी है। जगत के दुःखों का मूल कारण यह मोह राजा है। आपने उस मोह राजा से महाभारत अर्थात् महायुद्ध कर उसे गारत करके, बरबाद करके उसे जीत लिया है।

मैं उस जीत की विजय पताका की आरती अर्थात् गुणगान करता हूँ। उसमें आपने जो पुरुषार्थ किया; मैं उस पुरुषार्थ का गुणगान करता हूँ।

तात्पर्य यह है कि इस जगत में मोह का महाभारत (महायुद्ध) मचा हुआ है। उस मोहरूपी शत्रु को गारत करके, बरबाद करके जो विजय आपने प्राप्त की है; उसकी विजय गाथा मैं गाता हूँ। इस विजय गाथा में जो पुरुषार्थ आपने किया है; उसके गुणों का गान किया जायेगा।

हे भगवन ! आपने यह महायुद्ध स्वयं के स्वोन्मुखी पुरुषार्थ के बल पर जीता है। इसमें आपने किसी का सहयोग नहीं लिया है। जब आपने मोह राजा को जीता था; तब पूरी तरह आत्मस्थ थे, ध्यानस्थ थे। आप पूरी तरह निहत्थे थे। आपकी मुट्टी भी बंधी हुई नहीं थी; क्योंकि मुट्टी भी तो एक हथियार है। बंद मुट्टी दूसरों को मारने के लिए काम आती है; अतः हथियार नहीं तो और क्या है ?

आप किसी पर को आँख नहीं दिखा रहे थे; क्योंकि आँखे दिखाना भी तो हथियार हैं। आपकी दृष्टि तो नासाग्र थी।

आप किसी को हाथ उठाकर आशीर्वाद भी तो नहीं दे रहे थे; क्योंकि दूसरों को काबू में करने का यह भी तो एक हथियार ही है।

इसप्रकार आप एकदम निहत्थे थे। आपने यह युद्ध हथियारों के बल पर नहीं जीता था; पूरी तरह आत्मशक्ति से जीता था, आत्मज्ञान और आत्मध्यान से ही जीता था। इसतरह आप एकदम महान हैं।

आगे पूरी जयमाला पद्धरि छन्द में है। उसमें कहा गया है कि हे भगवन ! आपने सबसे पहले मिथ्यात्व नामक बैरी पर प्रहार किया है।

छन्द मूलतः इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय करण कृपाण सु प्रथम बार, मिथ्यात सुभट कीनो प्रहार ।

दृढ़ कोट विपर्यय मति उलंघि, पायो समकित थल थिर अभंग ॥१॥

करण शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। करण का अर्थ कर्ण (कान) तो होता ही है, पाँचों इन्द्रियों को भी करण कहते हैं। मन को तो अन्तःकरण कहा ही जाता है। करण का अर्थ भाव-परिणाम भी होता है। पाँच लब्धियों में करण नाम की एक लब्धि भी है; जिसके भीतर तीन करण होते हैं ह अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।

जयमाला के इस छन्द में करण शब्द का प्रयोग करणलब्धि के परिणामों, भावों के अर्थ में ही हुआ है।

युद्ध का यह उदाहरण उस समय का है, जब युद्ध तलवारों से लड़े जाते थे। इसलिए यहाँ कहा गया है कि हे भगवन् ! आपने सबसे पहले करणलब्धि के परिणामों रूप कृपाण से, तलवार से मिथ्यात्व नामक सुभट पर प्रहार किया।

तात्पर्य यह है कि आपने मोहरूपी राजा के नाश के लिए सबसे पहले मिथ्यात्व नामक सुभट पर करणलब्धिरूपी तलवार से प्रहार किया। उसके बाद उल्टी बुद्धि रूपी मजबूत कोट का उल्लंघन कर आपने सम्यग्दर्शनरूपी स्थिर और अभंग स्थल की प्राप्ति की अर्थात् आपने प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की।

इसप्रकार आप पहले गुणस्थान से सीधे चौथे गुणस्थान में आ गये; क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम गुणस्थान से दूसरे या तीसरे गुणस्थान में नहीं जाता और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि भी नहीं होता; क्योंकि दूसरा सासादन गुणस्थान तो गिरने का गुणस्थान है, अतः वह सम्यग्दर्शन के छूटते समय ही होता है और तीसरा सम्यग्मिथ्यात्व नामक गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय में होता है, जो अभी है ही नहीं। सम्यक्-प्रकृति के नहीं होने से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो सकता।

यह तो आप जानते ही होंगे कि अनादि मिथ्यादृष्टि जब धर्म आरंभ करता है तो क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि पूर्वक करणलब्धि में प्रवेश करता है।

करणलब्धि में मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय नामक महाभयंकर कर्म के तीन टुकड़े कर देता है; जिनके नाम क्रमशः ह्य मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति हैं। इनमें से जब मिथ्यात्व नामक प्रकृति का उदय होता है, तब पहला गुणस्थान होता है, सम्यग्मिथ्यात्व नामक प्रकृति का उदय होता है, तब सम्यग्मिथ्यात्व नामक तीसरा गुणस्थान होता है, जब मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदयाभावी क्षय एवं इन्हीं के आगामी निषेकों के

सदवस्थारूप उपशम के साथ सम्यक्प्रकृति नामक कर्म का उदय होता है, तब क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है।

यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में भी हो सकता है।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को तो सबसे पहले मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ ह्य इन पाँच प्रकृतियों के उपशम से प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन ही होता है। मिथ्यात्व कर्म की उक्त तीन प्रकृतियों और अनंतानुबंधी की चौकड़ी के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है; वह चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक कभी भी हो सकता है।

इसप्रकार उक्त पंक्तियों का भाव यह है कि हे सिद्ध भगवान ! जब आप अनादि मिथ्यात्व की अवस्था में थे, प्रथम गुणस्थान में थे; तब आपने क्षयोपशम, विशुद्धि, देशनालब्धि प्राप्त कर अपने शुद्धात्मा की सही पहिचान की और प्रायोग्यलब्धिपूर्वक करणलब्धि में प्रवेश किया।

वहाँ अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप तलवार से सबसे पहले अनादिकालीन मिथ्यात्वरूपी सुभट पर तीव्र प्रहार किया।

इसप्रकार उसे मारकर उल्टीबुद्धिरूपी, उल्टी मान्यतारूपी मजबूत कोट का उल्लंघन कर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनरूपी स्थिर और अभंग स्थल प्राप्त किया। तात्पर्य यह है कि आप मिथ्यात्व की ऊबड़-खाबड़ जमीन को पार कर सम्यग्दर्शनरूपी समतल भूमि पर आ गये।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्म धीरे-धीरे होता है। इसलिए हम अभी गृहीत मिथ्यात्व छोड़ देते हैं, अगृहीत को बाद में देखेंगे। उनसे कहते हैं कि मिथ्यात्व क्रमशः नहीं छूटता, एक साथ ही छूटता है।

हे भगवन् ! आपने करणलब्धि में एक ही चोट में मिथ्यात्व का अभाव करके स्थिर समकित स्थल को प्राप्त कर लिया है।

जयमाला की उक्त पंक्तियों में यह दिशा-निर्देश है कि यदि किसी को मोक्ष प्राप्त करना है, मोक्षमार्ग में प्रवेश करना है तो उसे सबसे पहले मिथ्यात्व का अभाव करना चाहिए।

पर आज की स्थिति तो यह है कि सभी को पहले योगा करना है, योगों को काबू में करना है, मन-वचन-काय की चंचलता को रोकना है। तदर्थ ध्यान शिविर चलते हैं और न जाने क्या-क्या होता है।

इसके आगे यदि कोई बात होती है तो कहा जाता है ह्व कषाय मत करो; पर इस पर कोई ध्यान ही नहीं देता कि सबसे पहले तो मिथ्यात्व का नाश होता है, उसके बाद अविरति और प्रमाद का नंबर आता है। कषाय और योग तो उसके बाद आते हैं।

शास्त्रों में कर्मबंध के कारणों का प्रतिपादन महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र में इसप्रकार किया है ह्व

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।^१

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ह्व ये पाँच बंध के कारण हैं। इनका अभाव क्रमशः ही होता है। सबसे पहले मिथ्यात्व का नाश होता है, उससे पहले गुणस्थान से निकल कर चौथे गुणस्थान में आते हैं। फिर अविरति जाने से क्रमशः पाँचवें और सातवें-छठवें गुणस्थान में आते हैं। उसके बाद प्रमाद के अभाव में अप्रमत्तादि गुणस्थान आते हैं। फिर कषाय के अभाव होने से ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान को पार कर केवली हो जाते हैं, तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाते हैं, अनन्तज्ञान और अनन्तसुख को प्राप्त कर लेते हैं।

इसके बाद वे अरहंत भगवान सिद्ध होने के लिए बुद्धिपूर्वक कुछ भी नहीं करते। समय पर जो होना होता है, वह सहज ही हो जाता है और वे मोक्ष में चले जाते हैं।

जिन मन-वचन-काय को काबू में करने के लिए अरहंत भगवान भी कुछ नहीं करते; ये प्रथम गुणस्थानवाले उसमें ही उलझ रहे हैं, कुछ शारीरिक क्रियायें करके या शुभभाव करके अपने को कृतकृत्य मान रहे हैं। ऐसे लोगों को सिद्धचक्र विधान की जयमाला में प्ररूपित

१. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ८, सूत्र १

मुक्तिमार्ग पर विशेष ध्यान देना चाहिए, बंध के कारणों के नाश के क्रम पर ध्यान देना चाहिए।

उक्त संदर्भ में एक विशेष बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि यद्यपि कषायों का पूर्णतः अभाव बारहवें गुणस्थान में होता है; तथापि उनका अभाव होना चौथे गुणस्थान से ही आरंभ हो जाता है। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ मिथ्यात्व के साथ ही चले जाते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, अविरति और प्रमाद के साथ चले जाते हैं।

मात्र संज्वलन कषाय ही दशवें गुणस्थान तक रहती है, वह पूर्ण वीतराग होने पर जाती है।

अविरति और प्रमाद मूलतः कषायरूप ही तो हैं। मोह दो प्रकार का होता है ह्व दर्शनमोह और चारित्रमोह। दर्शनमोह में मिथ्यात्व और चारित्रमोह में पच्चीस कषायें आती हैं। २५ कषायों से अतिरिक्त और चारित्रमोह क्या है ?

इन २५ कषायों को राग-द्वेष में विभाजित कर दिया जाता है। चार प्रकार का क्रोध, चार प्रकार का मान और अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ह्व ये बारह कषायें द्वेष हैं। शेष १३ कषायें राग हैं; जो इसप्रकार हैं ह्व चार प्रकार की माया, चार प्रकार का लोभ और हास्य, रति तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

इसप्रकार चाहे राग-द्वेष कहो, चाहे २५ कषायें कहो ह्व एक ही बात है।

मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायें सबसे पहले जाती हैं और शेष कषायें क्रमशः जाती रहती हैं।

अतः यह सहजसिद्ध ही है कि मिथ्यात्व के नाश का उपाय ही सबसे पहला कर्तव्य है। अनन्तानुबंधी कषाय के नाश के लिए अलग

से कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। इसे इसप्रकार भी कह सकते हैं कि मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के नाश का एक ही उपाय है और वह है करणलब्धि के परिणाम।

इसप्रकार सबसे पहले मिथ्यात्व का नाश कर, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद क्या हुआ वह यह आगामी पंक्तियों में बताते हैं; जो इसप्रकार हैं ह

(पद्धरि छन्द)

निज पर विवेक अंतर पुनीत, आतम रुचि वरती राजनीति ।
जग विभव विभाव असार एह, स्वातम सुखरस विपरीत देह ॥२॥
तिन नाशन लीनो दृढ़ संभार, शुद्धोपयोग चित चरण-सार ।

इसप्रकार दर्शनमोह का नाश हो गया और मिथ्यात्व के साथ होने वाला महाभारत (महायुद्ध) समाप्त हो गया। सम्यग्दर्शन का साम्राज्य स्थापित हो गया।

भले ही राजा बदल जाय, पर राजनीति न बदले तो देश को कोई लाभ नहीं होता। यही कारण है कि आपने फिर सम्यग्दृष्टि अवस्था में आत्मरुचि से सम्पन्न निज-पर विवेक की अर्थात् स्व-पर भेदविज्ञान की, अत्यन्त पवित्र आंतरिक राजनीति का प्रवर्तन किया।

आजतक मिथ्यात्व द्वारा संचालित विषय-कषाय की रुचिवाली पर में एकत्व की अपवित्र राजनीति चल रही थी। उसे समाप्त कर आपने स्व-पर विवेक सम्पन्न आत्मरुचि को बढ़ानेवाली राजनीति स्थापित की।

फिर आपने देखा कि जग का वैभव और उसके लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होनेवाले चारित्रमोह संबंधी राग-द्वेषरूप विभावभाव, कषायभाव असार हैं; इनमें कोई सार नहीं है। आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले अतीन्द्रिय सुख के रस से यह देह विपरीत है; इसमें भी कोई सार नहीं है; यह भी निस्सार है। अतः इन असार दुःखमय संयोगों को छोड़ने और चारित्रमोह संबंधी कषायरूप विभावभावों के नाश के लिए आपने

शुद्धोपयोगरूप स्वरूपाचरणचारित्र को धारण किया। सम्पूर्ण चारित्र में एक वही सार है; क्योंकि वह निश्चयचारित्र है।

तात्पर्य यह है कि आप सीधे स्वस्थान अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान में पहुँच कर ध्यानस्थ हो गये।

जब आप सातवें गुणस्थान से गिरकर प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान में आये तो....

(पद्धरि छन्द)

निर्ग्रन्थ कठिन मारग अनूप, हिंसादिक टारण सुलभ रूप ॥३॥
द्वय बीस परीसह सहन वीर, बहिरंतर संयम धरण धीर ।
द्वादश भावन, दश भेद धर्म, विधि नाशन बारह तप सु पर्म ॥४॥
शुभ दया हेत धरि समिति सार, मन शुद्धकरण त्रय गुप्ति धार ।
एकाकी निर्भय निःसहाय, विचरो प्रमत्त नाशन उपाय ॥५॥

तब आपने जगतजनों को अत्यन्त कठिन, अनुपम निर्ग्रन्थ मार्ग को अपनाया, नग्न दिगम्बर दशा धारण की। यह निर्ग्रन्थ अवस्था एकदम अहिंसक अवस्था है, सभी प्रकार की हिंसा को टालनेवाली है और छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते रहनेवाले सन्तों को सुलभ है, सहज है। तात्पर्य यह है कि जगतजनों को अत्यन्त कठिन होने के साथ-साथ तीन कषाय चौकड़ी के अभाववाले सन्तों को सहज है, सुलभ है।

यह तो आप जानते ही हैं कि जब कोई चतुर्थ या पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मुनि दीक्षा लेता है तो आचार्य या जिनेन्द्रदेव की मूर्ति के समक्ष सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर नग्न दिगम्बर दशा धारण करता है; तबतक वह चतुर्थ या पंचम गुणस्थान में ही रहता है।

नग्न दिगम्बर दशा धारण करके जब वे आत्मध्यान में बैठते हैं तो सीधा सातवाँ अप्रमत्त गुणस्थान होता है; किन्तु अन्तर्मुहूर्त के पहले ही ध्यान भंग हो जाने से प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान में आ जाते हैं। छठवाँ गुणस्थान भी गिरते समय प्राप्त होनेवाला गुणस्थान है।

जब वे छठवें गुणस्थान में होते हैं तो उनकी परिणति तीन कषाय के अभावरूप अत्यन्त निर्मल होती है, शुद्ध होती है; पर उपयोग में प्रमत्त अवस्था आ जाती है, शुभभाव में आ जाते हैं। इसप्रकार परिणति तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप शुद्ध और उपयोग उक्त भूमिका के योग्य शुभ भावों में रहता है। शुद्धभावरूप संयत और शुभभावरूप प्रमत्त हूँ इसप्रकार यह गुणस्थान प्रमत्त संयत है। देखो, शुभभाव भी प्रमाद है, बंध का कारण है।

हाँ, तो इस अत्यन्त कठिन निर्ग्रन्थ अनुपम मुक्तिमार्ग को अपनाने वाले वे नग्न दिगम्बर मुनिराज परमवीर हैं, अत्यन्त धीर हैं। बाईस परीषह सहन करने में परमवीर हैं और बाह्याभ्यंतर संयम धारण करने में अत्यन्त धीर हैं।

वे मुनिराज बारह भावनाओं का निरन्तर चिन्तन करते हैं, दश धर्म को धारण करते हैं और कर्मों का नाश करने के लिए परमोत्कृष्ट बारह तपों को तपते हैं। जीवदया के लिए पाँच समितियों का पालन करते हैं और मन की शुद्धि करने के लिए तीन गुप्तियों को धारण करते हैं।

इसप्रकार वे बिना किसी के सहयोग के अकेले ही अत्यन्त निर्भय होकर प्रमाद का नाश करने के लिए उपाय करते हुए आनन्दित रहते हैं।

इसप्रकार यहाँ मुनि भूमिका में होनेवाले निश्चय-व्यवहार चारित्र का निरूपण बखूबी कर दिया गया है।

यह प्रमत्तदशा उन्हें किसी भी रूप में स्वीकार नहीं है; यही कारण है कि उसके नाश के उपाय में निरन्तर संलग्न हैं।

आत्मा और मोहराजा के महाभारत में इसके आगे क्या होता है ? इस संबंध में आगे के छन्दों में देखिये।

वे छन्द मूलतः इसप्रकार हैं हूँ

(पद्धरि छन्द)

लखि मोह शत्रु परचंड जोर, तिस हनन शुक्ल दल ध्यान जोर।

आनन्द वीर रस हिये छाय, छायक श्रेणी आरम्भ थाय ॥६॥

बारम गुणस्थानक ताहि नाश, तेरम पायो निजपद प्रकाश।

नव केवललब्धि विराजमान, दैदीप्यमान सोहे सुभान ॥७॥

चारित्रमोह नामक शत्रु का प्रचंड जोर देखकर हे भगवन् ! आपने छठवें-सातवें गुणस्थानवाली मुनि अवस्था में उस चारित्रमोह नामक शत्रु का जड़मूल से नाश करने के लिए शुक्लध्यानरूपी दल का गठन किया और उसके जोर से चारित्रमोह पर आक्रमण किया। उस समय आपके हृदय में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी वीर रस छाया हुआ था और आपने उसी समय क्षपकश्रेणी का आरोहण किया और क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर मोहरूपी राजा का पूरी तरह नाश कर दिया।

इसप्रकार बारहवें गुणस्थान में उसका नाश करके आप निजपद से प्रकाशित हो उठे, आप तेरहवें गुणस्थान में पहुँच गये, आपको केवलज्ञान हो गया। आप अनन्त सुखी हो गये, नौ केवललब्धियों से विराजमान होकर सूर्य के समान दैदीप्यमान सुशोभित होने लगे।

नौ प्रकार के क्षायिकभाव ही नव केवललब्धियाँ हैं; जो इसप्रकार हैं

१. क्षायिकज्ञान, २. क्षायिकदर्शन, ३. क्षायिकदान, ४. क्षायिकलाभ, ५. क्षायिकभोग, ६. क्षायिक उपभोग, ७. क्षायिकवीर्य, ८. क्षायिकसम्यक्त्व और ९. क्षायिकचारित्र।

इसप्रकार जब आपका शासन पूरी तरह निरापद हो गया तो निश्चित होकर आपने...

(पद्धरि छन्द)

तिस मोह दुष्ट आज्ञा एकांत, थी कुमति स्वरूप अनेक भाँति।

जिनवाणी करि ताको विहंड, करि स्याद्वाद आज्ञा प्रचंड ॥८॥

उस दुष्ट मोहराजा की जो एकान्त की पोषक आज्ञा चलती थी, जो अनेक प्रकार कुमति स्वरूप थी; आपने दिव्यध्वनि द्वारा उस एकान्त सिद्धान्त का भलीभाँति खण्डन करके प्रचंड आज्ञा द्वारा स्याद्वाद की स्थापना की।

स्याद्वाद की निरकुंश स्थापना के बाद क्या हुआ ? यह जानने के लिए अगले छन्द देखिये; जो इसप्रकार हैं ह

(पद्धरि छन्द)

वरतायो जग में सुमति रूप, भविजन पायो आनंद अनूप ।

थे मोह नृपति उपकरण शेष, चारों अघातिया विधि विशेष ॥१॥

है नृपति सनानत रीति एह, अरि विमुख न राखे नाम तेह ।

यों तिन नाशन उद्यम सु ठानि, आरंभ्यो परम शुक्ल सु ध्यान ॥१०॥

आपकी उस दिव्यध्वनि से सम्पूर्ण जगत में सुमतिरूप सम्यग्ज्ञान का प्रवर्तन हुआ, वीतरागी तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ; इससे भव्य जीवों ने अनुपम आनन्द की प्राप्ति की ।

इतना सबकुछ हो जाने पर भी मोहकर्म का नाश होने के पहले जो अघातिया कर्मों की पुण्य प्रकृतियाँ बँधी थीं; वे पुण्य प्रकृतियाँ और अघातिया कर्म अभी भी विद्यमान हैं और उनके उदय में समवशरणरूप विभूति, सुन्दरतम देह एवं अद्भुत दिव्यध्वनि भी विद्यमान हैं । ये सब उपकरण मोह राजा की निशानी हैं ।

राजाओं की सनातन नीति-रीति यह रही है कि वे शत्रुओं का पूर्णतः नाश हो जाने पर भी, कहीं किसी भी रूप में उनका नामोनिशान भी नहीं रहने देते । हे भगवन् ! अरहंत अवस्था में उनका नामोनिशान भी मिटाने के लिए आपने परमशुक्लध्यान का उद्यम आरंभ किया ।

इसके बाद की स्थिति को जानने के लिए निम्नांकित छन्द देखियेह

(पद्धरि छन्द)

तिस बलकरि तिनकी थिति विनाश, पायो निर्भय सुखनिधि निवास ।

यह अक्षय जोत लई अबाधि, पुनि अंश न व्यापो शत्रु व्याध ॥११॥

शाश्वत स्वाश्रित सुखश्रेय स्वामि, है शांति संत तुम कर प्रणाम ।

अन्तिम पुरुषार्थ फल विशाल, तुम सुखसौं विलसौं अमित काल ॥१२॥

फिर उस परमशुक्लध्यान के बल से, उन अघातिया कर्मों की स्थिति का नाश करके, आपने निर्भय होकर अनन्त सुख की निधि के आवास को प्राप्त किया ।

तात्पर्य यह है कि हे सिद्ध भगवान इसप्रकार आपने यह सिद्ध पद प्राप्त किया है; आपने यह अबाधित अक्षय ज्योति जलाई है । अब इसके बाद आपको कर्मशत्रुरूप शिकारी का कोई अंश व्याप्त नहीं होगा । अब तो हे स्वामी ! आपने शाश्वत और स्वाधीन सुख प्राप्त कर लिया है; अब आपको अनन्त शान्ति भी प्राप्त हो गई है । संत कवि आपको बारंबार प्रणाम करते हैं ।

आपने चार पुरुषार्थों में अन्तिम मोक्ष पुरुषार्थ का विशाल फल प्राप्त कर लिया है । अब तो आप अपरिमित काल तक सुख से विलास करो ।

इसप्रकार यहाँ सिद्ध भगवान की भक्ति करते हुए भगवान आत्मा और मोह राजा के युद्ध के रूपक के माध्यम से आद्योपान्त मुक्तिमार्ग का प्रतिपादन कर दिया है ।

इसप्रकार के प्रयोगों को आधार बनाकर पूरे ग्रंथ लिखे गये हैं; जिनमें एक नाम संस्कृत भाषा में लिखे गये मदनपराजय नामक नाटक का भी आता है । ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें मदन अर्थात् कामदेवरूपी राजा की पराजय किसप्रकार हुई ह इस बात को सांग रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

जो बात पूरे ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत की जाती रही है; उस बात को महाकवि सन्तलालजी द्वारा यहाँ १३ छन्दों में पूरी सफलता के साथ प्रस्तुत कर दिया गया है ।

जयमाला के अंत में एक घत्ता छंद लिखा गया है; जो इसप्रकार है ह

(घत्ता)

परसमय-विदूरित पूरित निजसुख समयसार चेतनरूपा ।

नानाप्रकार पर का विकार सब टार लसै सब गुण भूपा ॥

ते निरावर्ण निर्देह निरूपम सिद्धचक्र परसिद्ध जजूं ।

सुर मुनि नित ध्यावैं आनन्द पावैं, मैं पूजत भवभार तजूं ॥

हे चेतनस्वरूप सिद्ध भगवान ! आप समयसारस्वरूप हैं । परसमय को विदीर्ण करनेवाले हैं और अपने अतीन्द्रिय आनन्द से भरे हुए हैं ।

समयसार में पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित आत्मा को परसमय कहा गया है।^१ तात्पर्य यह है कि जो जीव पौद्गलिक कर्मों के उदय से प्राप्त संयोग और संयोगी भावों में अपनापन स्थापित करते हैं; मिथ्यात्व से ग्रस्त वे जीव परसमय हैं।

प्रवचनसार के अनुसार जो जीव पर्यायों में निरत हैं, उनमें ही अपनापन स्थापित करते हैं, उन्हें ही निजरूप जानते हैं; वे जीव परसमय हैं।^२

ऐसे परसमयपने का आपने अभाव कर दिया है।

यदि स्वसमय और परसमय के संबंध में विशेष जानने की जिज्ञासा हो तो लेखक की अन्य कृतियाँ समयसार अनुशीलन और प्रवचनसार अनुशीलन के उक्त अंश का अध्ययन किया जाना चाहिए।

संसार अवस्था में जो अनेक प्रकार की विकारी अवस्थाएँ थीं; उन सभी को टार कर आप अनन्तगुणों के राजा बन गये हैं।

इसप्रकार आप कर्मों के आवरण से रहित हैं, पूर्णतः निरावरण हैं, मानव देह से भी रहित हैं, पूर्णतः निर्देह हैं, निरुपम हैं, आपकी उपमा किसी से नहीं दी जा सकती; क्योंकि जगत में कोई पदार्थ ऐसा है ही नहीं कि जिससे आपकी उपमा दी जा सके।

इसप्रकार हे प्रसिद्ध सिद्धों के समूहरूप सिद्धचक्र ! मैं आपकी पूजन करता हूँ। देवता लोग और मुनिगण निरन्तर आपका ध्यान करते हैं और आनन्द को प्राप्त करते हैं। मैं भी आपकी पूजन करके संसार के भार से मुक्त होना चाहता हूँ।

इसप्रकार इस जयमाला में प्रथम गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक का सम्पूर्ण मोक्षमार्ग प्रशस्त कर दिया है। ●

१. समयसार, गाथा २

२. प्रवचनसार, गाथा ९३ एवं ९४

दूसरी पूजन की जयमाला

द्वितीय पूजन की जयमाला आरंभ करने के पूर्व मैं महाकवि संतलालजी की काव्यप्रतिभा एवं कल्पनालोक की उड़ान का एक नमूना प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इससे आपको पता चलेगा कि यह सिद्धचक्र पूजन विधान कोरी तुकबंदी नहीं है। इसमें वे सब बातें देखने को मिलेंगी कि जो एक महाकवि के काव्य में होना चाहिए।

इसी विधान की दूसरी पूजन में समागत जल के छन्द को देखिये ह
(हरिगीतिका)

हिमशैल धवल महान कठिन पाषाण तुम जस रासतै ।
शरमाय अरु सकुचाय द्रव हूँ बही गंगा तासतैं ॥
सम्बन्ध योग चितार चित भेटार्थ झारी में भरूँ ।
षोडश गुणान्वित सिद्धचक्र चितार उर पूजा करूँ ॥१॥

कवि भगवान के चरणों में जल समर्पित कर रहा है। उसको प्रस्तुत करते हुए वह कहता है ह

धवल हिमालय पर्वत अत्यन्त कठोर बर्फीले पाषाण से निर्मित है; अतः उसके पिघलने का कोई सवाल नहीं था; क्योंकि पाषाण हृदय लोग पिघला नहीं करते; किन्तु हे भगवन ! आपके ढेर सारे यश के प्रताप से शरमा कर और सकुचा कर वह द्रवित हो उठा है, पिघल गया है; उसी जल से गंगा नदी की विशाल धारा बहने लगी।

संबंध योग का चित्त में विचार कर मैं भी उसी गंगा का जल झारी में भरकर तुम्हारे चरणों में समर्पित करने के लिए लाया हूँ। अतः सोलह गुणों से युक्त सिद्धों के समूहरूप सिद्धचक्र का चिन्तवन करके हृदय से पूजन करता हूँ।

संबंध योग क्या है ? ह यह तो आप जानते ही होंगे। जो हमारे इष्ट हों, जिनके हम परमभक्त हों, जो हमारे आराध्य हों; उनके संयोग में

जो-जो वस्तुएँ आती हैं, हम उनसे भी उतना ही प्यार करने लगते हैं, जितना अपने इष्ट से करते हैं।

महाकवि रसखान लिखते हैं ह

(मत्तगयंद सवैया)

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि, नवों निधि को सुख, नंद की धनु चराय बिसारौं ॥
रसखान कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिक हू कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥

गाय चराते समय श्रीकृष्ण भगवान के कंधे पर जो कम्बल रखा था; उस कंबल के ऊपर मैं तीन लोक का राज्य न्यौछावर कर सकता हूँ। आठों सिद्धियों और नौ निधियों के सुख को श्रीकृष्ण के पालक नंद की गायों के चराने में भूल सकता हूँ।

रसखान कवि कहते हैं कि मैं इन आँखों से ब्रज के वन, उपवन और तालाबों को कब देखूँगा और अन्त में वे कहते हैं कि जिन करील के कुंजों में श्रीकृष्ण बचपन में छुपा करते थे; उन कटीले करील के कुंजों पर मैं सोने के करोड़ों राजमहल न्यौछावर कर सकता हूँ।

यह अपने आराध्य के प्रति बिना शर्त सर्वस्व समर्पण करने की भावना का दिग्दर्शन है।

हम आज भी देखते हैं कि जब गाँधीजी की चादर की नीलामी करते हैं तो वह चादर लाखों में जाती है। अब तो सिनेमा के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की चीजों की भी नीलामी होने लगी है; वह तो करोड़ों से कम में नहीं जाती। इसको साहित्य में संबंध भावना कहते हैं। हमारे प्रिय व्यक्ति के संयोग में जो-जो वस्तुएँ आती हैं, हम उन वस्तुओं को हर कीमत पर पाना चाहते हैं।

यह भी भक्ति का, प्रेम का, राग का एक प्रकार है।

इसी को आधार बनाकर यहाँ संत कवि कहते हैं कि हे भगवान आपके यश के संयोग में आने के कारण कठोर बर्फीले पाषाणों के

पिघलते जल का संयोग संबंध का विचार करके ही मैं आपके चरणों में समर्पित करने के लिए यह गंगाजल लाया हूँ।

कवि यह कहना चाहता है कि इस जल ने आपके यश का स्पर्श किया है; जिससे यह इतना महान हो गया है कि मेरे लिए इससे उत्तम कोई अन्य वस्तु नहीं है। यही कारण है कि मैं यह गंगाजल आपको अर्पित कर रहा हूँ। इस जल के माध्यम से मैं अपना सबसे प्रिय पदार्थ आपको समर्पण कर रहा हूँ।

सब लोगों के लिए एकदम सुपरिचित साधारण सी जल से होनेवाली पूजा को कवि ने किस अद्भुत कल्पना के साथ प्रस्तुत किया है।

इसमें कवि की काव्यप्रतिभा झलकती है। अभी तक आप इस छन्द का मर्म समझें बिना ही इसे पढ़ते रहे हैं; अब जब आप इस छन्द को पढ़ेंगे तो अद्भुत आनन्द आयेगा।

अब जयमाला का अर्थ आरंभ करते हैं। जयमाला के आरंभ में आनेवाला दोहा इसप्रकार है ह

(दोहा)

पंच परम परमात्मा, रहित कर्म के फंद ।

जग प्रपंच विरहित सदा, नमों सिद्ध सुखकंद ॥१॥

कर्मों के फंदों से रहित पंचपरमेष्ठी ही परमात्मा हैं। आनन्द के कंद वे सिद्ध भगवान सदा ही जगत के प्रपंचों से रहित होते हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि अष्ट कर्मों के फंदों से रहित सिद्ध भगवान ही परम परमात्मा हैं और हमारे साथ न्याय करनेवाले पंच हैं। जगत के प्रपंचों से रहित सिद्ध भगवान सुख के कंद हैं, अन्दर-बाहर सर्वत्र सुख से पूर्णतः लबालब हैं।

पूजन सिद्ध भगवान की चल रही है और बात पंचपरमेष्ठी की आ गई है। अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु अभी सिद्ध कहाँ हुए हैं; उन्हें सिद्धपद में शामिल क्यों कर रहे हैं ?

अभी तो बात इतनी स्पष्ट नहीं है, पर आगे सातवीं पूजन में तो पाँचों परमेष्ठियों को सौ-सौ अर्घ्य चढ़ाये जावेंगे।

सिद्ध पूजन में पंच-परमेष्ठियों को अर्घ्य क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर यह कहकर ही दिया जाता रहा है कि कुछ आज के सिद्ध हैं, कुछ कल के सिद्ध हैं। आखिर तो दूरान्दूर भव्यों को छोड़कर सभी भव्यों को एक न एक दिन मोक्ष जाना ही है। उनमें हम और आप भी शामिल हो सकते हैं ? आखिर त्रिकालवर्ती सिद्धों को हम नमस्कार करते ही हैं; उन्हें अर्घ्य चढ़ाते ही हैं, उनकी पूजा भी करते हैं।

जब हम भी भविष्य के सिद्ध हैं तो फिर यहाँ पंचपरमेष्ठियों तक ही सीमित क्यों रहे हैं, इसमें हमें व आपको भी शामिल करना चाहिए था।

अरे, भाई ! जब भविष्य के सिद्धों को नमस्कार करते हैं, तब उनमें आप भी शामिल रहते ही हैं।

तब तो रहते हैं, पर अभी यहाँ क्यों नहीं ?

इसलिए नहीं कि अभी आप पूरी तरह मोक्षमार्ग में नहीं चल रहे हैं और पंचपरमेष्ठी मुक्ति के मार्ग में या तो समर्पण भाव से चल रहे हैं या फिर मुक्त हो गये हैं।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि यहाँ किसी को भी नाम लेकर शामिल नहीं किया गया, मात्र पदों को ही शामिल किया गया है। नाम लेने से व्यक्ति को अभिमान हो जाता है। मारीचि का भगवान ऋषभदेव ने भावी तीर्थंकर के रूप में नाम क्या लिया, फिर देखो, मारीचि के पर निकल आये। परिणाम जो हुआ, वह सबके सामने है।

देखो, भाई ! हम व्यक्तियों के पुजारी नहीं, गुणों के पुजारी हैं, पदों के पुजारी हैं। यदि हम कहीं व्यक्तियों की पूजा भी करते हैं तो हम उनके गुणों के आधार पर ही करते हैं।

हमारे यहाँ तो साफ-साफ लिखा है ह

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया ।।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ।।^१

जिस व्यक्ति ने राग-द्वेष-काम आदि विकारों को जीत लिया हो, सारे जगत को जान लिया हो और सभी जीवों को निस्पृह हो मोक्षमार्ग का उपदेश दिया हो; अर्थात् जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो; उसका नाम कुछ भी क्यों न हो, महावीर हो, बुद्ध हो, जिन हो, हरि हो, हर हो; मैं तो अत्यन्त भक्तिभाव से उसे नमस्कार करता हूँ।

ध्यान रहे, हमारे यहाँ नाम की नहीं, गुणों की महिमा है। यही कारण है कि हम बिना किसी भेदभाव के सिद्धों की पूजा कर रहे हैं।

सिद्धों की पूजन में पंचपरमेष्ठी को शामिल करने का उक्त कारण तो महत्त्वपूर्ण है ही; पर एक बात यह भी तो है कि यद्यपि सिद्धों में अनन्त गुण हैं; तथापि छद्मस्थों को उनका जानना संभव नहीं है, कहना तो और भी अधिक असंभव है; क्योंकि उनमें अनन्त गुण हैं ह्व यह हम शास्त्रों में पढ़कर ही जानते हैं; सो भी वह इतना ही जानते हैं कि अनन्त गुण हैं; वे कौन-कौन हैं, उनके क्या नाम हैं ह्व यह नहीं जानते।

अतः यह भी कम महत्त्वपूर्ण कारण नहीं है। यही कारण है कि हम सिद्धचक्र पूजन में पंचपरमेष्ठियों को शामिल करते हैं, उनका सहारा लेते हैं।

विचारने की बात तब हो जाती है; जब हम इसप्रकार के प्रसंगों में अपने राग-द्वेष जोड़ने लगते हैं।

हमने मंदिर में त्रिमूर्ति विराजमान की। बीच में भगवान ऋषभदेव और अगल-बगल में भरत और बाहुबली। क्या इसमें हमें परिवारवाद नजर नहीं आता ?

ऐसा ही क्यों ? क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि बीच में आदिनाथ

और अगल-बगल में अजितनाथ और संभवनाथ; पर नहीं। हमने आजतक इसप्रकार की तीन मूर्तियाँ नहीं देखीं। क्या अजितनाथ और संभवनाथ भरत और बाहुबली से कम हैं।

जब हम कहते हैं कि ऐसा करो कि बीच में भरत; एक ओर आदिनाथ और दूसरी ओर बाहुबली।

तब पीछे से एकदम आवाज आती है हूँ क्या बात करते हो, बीच में तो पिता को ही रहना चाहिए। क्या ऐसे चिन्तन पर परिवादवाद ही हावी नहीं है? वीतरागी-सर्वज्ञ अरहंतों में बाप-बेटे कहाँ से आ गये?

हम यह बात कह ही रहे थे कि एक भाई बीच में ही बोल उठे कि आप ठीक कहते हैं। हमने तो शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ की मूर्तियाँ स्थापित की हैं। इनमें कोई परिवारवाद नहीं है।

हाँ, परिवारवाद तो नहीं है; पर शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ही क्यों, अनंतनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ कैसे रहते तो वे कहने लगे हूँ ये तीनों तीर्थकर के साथ-साथ चक्रवर्ती और कामदेव भी तो हैं।

मैंने कहा हूँ यह कहो न कि आपको पैसेवाले चक्रवर्ती और शरीर की सुन्दरतावाले कामदेव चाहिए। अरे भाई! जो मूर्ति है, वह अरहंत की है। अरहंत चक्रवर्ती नहीं होते, जब चक्रवर्तित्व छोड़ते हैं, तब अरहंत बनते हैं। जिस शरीर की सुन्दरता की तुम बात कर रहे हो, सबसे पहले भेदविज्ञान तो उस शरीर से ही किया जाता है।

इसप्रकार यदि आप ९६ हजार पत्नियों के पति को मुख्यता दोगे तो फिर बालब्रह्मचारियों का क्या होगा, बालयति तीर्थकरों का क्या होगा?

उसमें परिवारवाद की झलक थी और इसमें पैसे की महिमा है, शरीर की सुन्दरता की महिमा है; वीतरागता और सर्वज्ञता की तो कोई बात ही नहीं करता।

वैष्णवों के मंदिरों में राम परिवार, शैवों के मंदिरों में शिव परिवार की मूर्तियाँ होती हैं; अब तो एक ही मंदिर में राम परिवार और शिव

परिवार एक साथ ही मिल जावेंगे। उसी की तुलना में आप ऋषभ परिवार को क्यों विराजमान नहीं करते।

बीच में ऋषभदेव, एक ओर नन्दा और दूसरी ओर सुनन्दा। कितना अच्छा लगता। कारीगरों को भी अपनी कला दिखाने का मौका मिल जाता। इसके लिए उन्हें यक्ष-यक्षणी नहीं बनाने पड़ते।

पर नहीं, हमने ऐसा नहीं किया; क्योंकि हम वीतरागता के उपासक हैं, ऐसा नहीं कर सकते थे।

मैं किसी के ऊपर आरोप नहीं लगा रहा हूँ। हो सकता है उन्होंने ऐसा कुछ सोचा ही न हो, पर मैं तो यह कह रहा हूँ कि यदि कोई ऐसा सोचता है तो वह ठीक नहीं है।

अरे, भाई! जहाँ-जहाँ ऋषभदेव के साथ भरत-बाहुबली की मूर्तियाँ हैं; शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ की मूर्तियाँ हैं; पंच बालयतियों की प्रतिमाएँ हैं; मैं उन सभी की अत्यन्त भक्तिभाव से पूजा करता हूँ; उन्हें भी परमपूज्य मानता हूँ, मैं उन मूर्तियों पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा रहा हूँ। मैं तो आपके मनो में जो अज्ञान भरा हुआ है, उसका उद्घाटन कर रहा हूँ।

यदि मेरी बात में आपको कुछ दम लगे तो उस पर एक बार गंभीरता से विचार अवश्य करें। मानना न मानना तो पूरी तरह आपके ही हाथ में है; अतः आप इस बात की चिन्ता न करें कि इससे तो...।

मैं एक सत्य घटना की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। बात उस समय की है कि जब देवलाली में समवशरण मंदिर बन रहा था। उसमें दीवाल में चारों ओर चौबीस तीर्थकरों की मूर्तियाँ विराजमान हो रही थीं, समवशरण के साथ चौबीसी भी बन रही थी। सभी मूर्तियाँ बुक हो चुकी थीं। इसी बीच एक भाई मेरे पास आये और कहने लगे कि आपके होते हुए ऐसा अन्याय तो नहीं होना चाहिए।

मैंने कहा हूँ भाई ! ऐसा क्या अन्याय हो गया है, जो आप आपे के बाहर हो रहे हैं ?

वे कहने लगे कि मैंने इन लोगों से कहा कि मुझे शान्तिनाथ भगवान दे दो; पर ये सुनते ही नहीं; अच्छे-अच्छे तो इन लोगों ने आपस में बांट लिये हैं, अब मुझे पुष्पदन्त टिका रहे हैं।

मैंने कहा हूँ तीर्थकर तो सभी समान हैं और जिन्हें हम वर्तमान कहते हैं, वर्तमान चौबीसी मानते हैं; वे सभी तो अभी सिद्धशिला में विराजमान हैं। सिद्ध अवस्था में हैं। वहाँ तो कोई अन्तर होता ही नहीं। आप ऐसा कह कर कि हमें पुष्पदन्त टिका रहे हैं, पुष्पदन्त भगवान का अपमान क्यों कर रहे हो ?

जब मैंने व्यवस्थापकों से उनकी सिफारिश की तो वे बोले कि हम क्या करें हूँ शान्तिनाथ पहले से ही अमुक व्यक्ति ने ले लिए; अब तो पुष्पदन्त ही बचे हैं, उन्हें कोई लेना ही नहीं चाहता।

यहाँ भी स्थिति वैसी ही थी। पुष्पदन्त दोनों की दृष्टि में बिचारे हो गये थे; क्योंकि उनका कोई चारा (ठिकाना) ही नहीं था। जो चक्रवर्ती थे या बालयति थे या फिर कुछ चमत्कारी थे; वे सब तो चले गये थे, अब तो...।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के जन्मदाता आचार्य धरसेन ने यह कभी सोचा भी नहीं होगा कि जैन शास्त्रों को सबसे पहले लिखनेवाले जिस योग्यतम शिष्य का नाम भगवान पुष्पदन्त के नाम पर मैंने पुष्पदन्त रखा है; एक दिन उन पुष्पदन्त भगवान को कोई भी नहीं लेना चाहेगा।

मुझे यहाँ अरहंतों का पुजारी तो कोई दिखता ही नहीं, तीर्थकरों के ग्राहक भी कम ही हैं; सभी को चक्रवर्ती, कामदेव, बालयति ही चाहिए।

भाई ! तीर्थकर तो चौबीसों ही हैं, पुष्पदन्त भी तीर्थकर हैं, वे न तो चक्रवर्ती थे, न कामदेव थे। इसलिए वे पसंद नहीं किये गये। अब सोचो कि हम तीर्थकर अरहंतों के पुजारी नहीं, पैसेवाले चक्रवर्ती और रूपवान कामदेवों के पुजारी हुए।

आजकल बालयति खूब चल रहे हैं। इन्हें कौन चला रहा है ? इन बाल ब्रह्मचारियों को गृहस्थ लोग तो चलायेंगे नहीं; बालब्रह्मचारी लोग ही चला रहे होंगे; क्योंकि वे भी तो बालब्रह्मचारी हैं।

शायद उन्हें पता नहीं कि बाल शब्द का क्या अर्थ होता है। बाल माने बालक। बालक प्रायः नासमझ ही होते हैं; इसकारण बाल शब्द का प्रयोग नासमझों के अर्थ में ही होता रहा है। जैसे बाल मरण, बालबुद्धि, बालचेष्टा आदि।

यदि वे बाल नहीं, समझदार हैं तो मैं कहना चाहता हूँ कि पंचपरमेष्ठी अवस्था में तो सभी तीर्थकर ब्रह्मचारी ही थे। अरे, भाई ! हम तो पंच-परमेष्ठी के पुजारी हैं; उसके पहले कौन/कैसा था; उससे हमें क्या प्रयोजन ?

जो भी हो, पर यह भी तो ऐसा ही हुआ कि परिवारवालों को परिवारवाद पसन्द आया, पैसेवालों को चक्रवर्ती और सुन्दरता पर रीझनेवालों को कामदेव जँचे तो इसी न्याय से बालब्रह्मचारियों को यदि बालब्रह्मचारी तीर्थकर जँचें तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

अरे, भाई ! लौकिकजन तो लौकिकजन ही हैं; उनकी क्या होइ करना। अपन तो पढ़े-लिखे लोग हैं, स्वाध्यायी हैं, अभ्यासी हैं; अपन को तो ऐसी बातों पर गंभीर होना चाहिए, गंभीरता से सोचना चाहिए।

हमें एक पौर सा चढ़ता है और जब एक जगह बाहुबली तो फिर गाँव-गाँव में बाहुबली हो जाते हैं; जब तीन चक्रवर्ती तीर्थकरों का युग आया तो सभी जगह वही हो गये। सीमन्धर का युग आया तो गाँव-गाँव में सीमन्धर हो गये। इसीप्रकार जब पंचबालयति तीर्थकरों की धुन चढ़ी तो गाँव-गाँव में पंचबालयति की प्रतिष्ठा होने लगी।

हम अपने चित्त की स्थिति पर एक बार गंभीरता से विचार तो करें कि एक ओर हम ९६ हजार पत्नियों के पति को महिमा मण्डित कर रहे हैं; वहीं दूसरी ओर एक भी शादी नहीं करनेवाले बालब्रह्मचारियों के गीत गा रहे हैं। इसमें हमें कुछ विरोधाभास सा नहीं लगता ?

अरे, भाई ! दोनों वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा हैं ह्व यह क्यों नहीं सोचते ? दोनों में भेद डालकर हम क्या करना चाहते हैं ?

आखिर, यह सब क्या है, क्या हम सब लोग भी वैसे ही गतानुगतिको लोकः जैसे लोग हैं, भेड़चाल से चलनेवाले लोग हैं।

यदि हम विद्वान लोग भी ऐसी लौकिक धाराओं में ही बहेंगे तो फिर समाज का क्या होगा ह्व यह गंभीरता से विचारने की बात है।

इसके बाद पूरी जयमाला त्रोटक छन्द में लिखी गई है; जिसका आरंभिक छन्द इसप्रकार हैं ह्व

(त्रोटक छन्द)

दुखकारन द्वेष विडारन हो, वशडारन राग निवारन हो।

भवितारन पूरणकारण हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥२॥

हे सिद्ध भगवान ! आप दुःख के कारणरूप द्वेष का नाश करनेवाले हो और सभी जीवों को अपने वश में डालनेवाले इस राग का निवारण करनेवाले हो।

हे भगवन ! यह द्वेष न केवल दुःख का कारण है, अपितु स्वयं दुःखस्वरूप भी है। आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में इन मोह-राग-द्वेषरूप आस्रव भावों को अध्रुव, अनित्य, अशरण, दुःखस्वरूप और दुःख का कारण कहा है।^१

यद्यपि मोह-राग-द्वेष ह्व सभी आस्रवभाव दुःख के कारण हैं; तथापि यहाँ द्वेष को दुःख का कारण और राग को वश में डालने अर्थात् बंधन में डालनेवाला, परवश करनेवाला कहा है।

जो डाकू जेल की पाँच फुट मोटी दीवाल को तोड़कर भाग जाता है, वह डाकू अपने घर में सो रहा हो और बाहर से कोई सांकल लगा जावे तो घंटों घर में कैद रहता है। जबतक कोई सांकल न खोले; तब तक वह चाह कर भी बाहर नहीं आ पाता। वह उन प्लाई के बने किबाड़ों को भी नहीं तोड़ पाता; क्योंकि उसे उन किबाड़ों से राग है।

१. समयसार, गाथा ७४

जिसे पुलिस भी नहीं पकड़ पाती; वह माँ-बाप, पत्नी और बच्चों के राग से जकड़ा रहता है, कहीं जा नहीं पाता, चला जाये तो लौट-लौटकर आता है।

जिसप्रकार विषय-कषाय का अशुभराग बंधन में डालनेवाला है; उसीप्रकार माँ-बाप और बाल-बच्चों का शुभराग भी तो बंधन में डालनेवाला है। माँ-बाप और छोटे-छोटे बाल बच्चों के प्रति राग को शुभराग ही कहते हैं। बड़ी मेहनत से बनाई हुई धार्मिक संस्थाओं के प्रति होनेवाला शुभराग भी हमें बाँधता है, इन्हें छोड़कर जाने को मन नहीं करता।

इसलिए बुद्धिपूर्वक द्वेष को दुःख का कारण और राग को वश में रखनेवाला कहा गया है और हे भगवन् ! आपको वशडारन राग का निवारण करनेवाला और दुःख के कारणरूप द्वेष का विदारन करनेवाला कहा गया है।

आगे की पंक्ति में कहा गया है कि हे भगवन् ! आप भव्य जीवों के कल्याण करने के लिए परिपूर्ण कारण हो, पर्याप्त कारण हो। ऐसे स्व-पर सभी को सुख के कारण हे सभी सिद्धभगवान ! आपको नमस्कार हो, बारम्बार नमस्कार हो।

तात्पर्य यह है कि सभी सिद्ध भगवान मोह-राग-द्वेष से रहित हैं, भव्यों का कल्याण करनेवाले हैं और स्व-पर को सुख प्राप्ति के मूल कारण हैं।

तीसरा छन्द इसप्रकार है ह्व

(त्रोटक छन्द)

समयामृत पूरित देव सही, पर आकृत मूरति लेश नहीं।

विपरीत विभाव निवारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥३॥

समय शब्द के अनेक अर्थ होते हैं ह्व काल का सबसे छोटा भाग, टाइम, देश, युद्ध, छहों द्रव्य, जीवद्रव्य, शुद्धात्मा आदि।

यहाँ इस छन्द में समय का अर्थ शुद्धात्मा ही लेना चाहिए।

हे भगवन् ! आप शुद्धात्मारूपी अमृत से भरपूर हो; आपमें पर की आकृति और मूर्तिकपना रंचमात्र भी नहीं है। आत्मस्वभाव के विपरीत भावों और पर के लक्ष्य से होनेवाले विभावभावों का आप निवारण करनेवाले हो। अतीन्द्रियसुख के कारणरूप हे सिद्ध भगवान ! आपको नमस्कार हो, बारम्बार नमस्कार हो।

भगवान आत्मा और सिद्ध भगवान तो सदा अमूर्तिक ही हैं। अरहंत भगवान को मूर्तिक शरीर में विद्यमान रहने के कारण व्यवहारनय से कदाचित् मूर्तिक भी कह सकते हैं; किन्तु निश्चय से तो वे भी अमूर्तिक ही हैं।

मूर्तियाँ तो मूर्तिक पदार्थों से बनती हैं, पर उनसे आत्मा या अरहंत सिद्ध भगवान मूर्तिक नहीं हो जाते।

चौथा छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

अखिना अभिना अछिना सुपरा, अभिदा अखिदा अविनाशवरा।

यमजाम जरा दुखजारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥४॥

हे सभी सिद्धभगवान ! आप खिन्नता से रहित हो, भिन्नता से रहित हो और क्षीणता से भी रहित हो; आप तो जगत में सर्वश्रेष्ठ हो।

अधिक क्या कहे आप भेद से रहित हैं, खेद से रहित हैं और आपने अविनाशी पद का वरण किया है। ऐसा भी कह सकते हैं कि आपने अपने अविनाशी स्वभाव का आश्रय लेकर अविनाशी मोक्षपद की प्राप्ति की है।

जगत के लोग तो सदा ही विनाशीक वस्तुओं का वरण करते हैं और फिर उनके वियोग हो जाने पर खेदखिन्न होते रहते हैं; किन्तु आपने अविनाशी स्वभाव का वरण कर अविनाशी पद प्राप्त किया है।

देखो, यहाँ सिद्ध भगवान को अविनाशवरा कहा जा रहा है। यह कितना अच्छा प्रयोग है। इसका भाव यह है कि सारा जगत तो क्षणभंगुर पदार्थों के पीछे भाग रहा है; पर आपने अनादि-अनन्त अविनाशी

भगवान आत्मा का वरण किया है। यही कारण है कि आपको अविनाशी सिद्धपद की प्राप्ति हुई है। जिसको भी अविनाशी पद की प्राप्ति करनी हो, वह क्षणभंगुर पर्यायों के पीछे दौड़ना छोड़कर एकमात्र अपने अविनाशी आत्मा में अपनापन स्थापित करे, उसे ही निजरूप जाने-माने और उसी में जम जाय, रम जाय।

यदि ऐसा किया गया तो वह भी आपके समान अविनाशी सिद्ध पद की प्राप्ति कर लेगा।

अधिक क्या कहें, आप तो जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखों को जला देनेवाले हो। हे सुख के कारणरूप सभी सिद्ध भगवान ! आपको नमस्कार हो, बारम्बार नमस्कार हो।

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

निर-आश्रित स्वाश्रित वासित हो, पर आश्रित खेद विनाशित हो।

विधि धार न हार न पारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥५॥

आप निराश्रित हो अर्थात् किसी के आश्रित नहीं हो; परन्तु स्वाश्रित हो, स्वाधीन हो, स्वाश्रय में रहनेवाले हो; इसलिए पर के आश्रित रहने में जो खेद होता है, उस खेद का विनाश करनेवाले हो।

इस पंक्ति में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि पर का आश्रय लेनेवाले सदा खेदखिन्न ही होते रहते हैं। हे भगवन् ! आपने अपने भगवान आत्मा का आश्रय लेकर पर के आश्रय से होनेवाला खेद का पूरी तरह अभाव कर दिया है। अतः जिन लोगों को खेदखिन्न नहीं होना हो, वे स्वयं के भगवान आत्मा का आश्रय लें। सुखी होने का एकमात्र उपाय यही है।

कर्मों को धारण न करनेवाले, उनसे हार न माननेवाले, संसार से पार पानेवाले सुख के कारण हे सिद्ध भगवान ! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

अमुधा अछुधा अद्विधा अविधं, अकुधा सुसुधा सुबुधा सुसिधं।
विधि कानन दहन हुताशन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥६॥

हे भगवन् ! आप मूढ़ता से रहित हो, भूख-प्यास से रहित हो, सब प्रकार की दुविधाओं से रहित हो, अनेक विविधताओं से रहित हो, खोटी बुद्धि से रहित हो, अमृतमयी हो, केवलज्ञान से सहित हो और भली प्रकार सिद्ध हुए हो। कर्मरूपी जंगल को जलाने के लिए दावाग्नि हो। हे सुख के कारणरूप सिद्ध भगवान ! आपको बारम्बार नमस्कार हो।

इस छन्द में अष्ट कर्मों को भयंकर जंगल बताया गया है और हे भगवन् ! आपको उस जंगल को जलानेवाला दावाग्नि कहा गया है।

तात्पर्य मात्र इतना ही है कि आपने कर्मों के जंगल को जला दिया है और आप उन कर्मों से मुक्त हो गये हैं।

सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

शरनं चरनं वरनं करनं, धरनं चरनं मरनं हरनं।
तरनं भव-वारिधि तारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥७॥

हे भगवन् ! जो आपके चरणों की शरण में आया, आपने उसका सबकुछ सही कर दिया है। जिसने आपके चरणों में अपना माथा रख दिया, आपने उसके मरण का हरण कर लिया, अमर बना दिया। आप स्वयं संसार सागर से पार उतर गये हो और भव्यों को भी पार उतारनेवाले हो। सुख के कारणरूप सब सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

पहली पंक्ति में समागत साहित्यिक सौन्दर्य देखने लायक है। एक तो इस पंक्ति में एक भी अक्षर दीर्घ नहीं है, सभी ह्रस्व अक्षरों का प्रयोग किया गया है। दूसरे प्रत्येक शब्द का अन्तिम अक्षर एक ही है। इसप्रकार

इसमें अन्त्यानुप्रास की छटा देखने योग्य है। ऐसा होने पर भी अर्थ करने में कोई कठिनाई नहीं है। कवि जो कहना चाहते हैं, वह सहज ही पाठक तक पहुँच रहा है।

आठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

भववास तरास (त्रास) विनाशन हो, दुखरास विनास हुताशन हो।
निज दासन त्रास निवारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥८॥

हे भगवन् ! आप संसार में रहने से होनेवाले त्रास को निवारण करनेवाले हो, दुःख के ढेर का नाश करने के लिए हुताशन हो, दावाग्नि हो। हे भगवन् ! आप अपने दासों के दुःखों के निवारण करनेवाले हो। हे सुख के कारणस्वरूप सभी सिद्ध भगवान ! आपको बारंबार नमस्कार हो।

हे भगवन् ! यद्यपि आप तो सदा स्वयं में लीन रहनेवाले हो, आप किसी का कुछ भी नहीं करते ह यह बात परमसत्य होने पर भी; जो व्यक्ति आपकी आराधना करते हैं, आपके द्वारा बताये गये मुक्तिमार्ग पर चलते हैं; उनके सांसारिक सुख-दुःख नष्ट हो जाते हैं, अपार कष्ट मिट जाते हैं; इसलिए व्यवहारनय से ऐसा कह दिया जाता है कि आप अपने अनुयायियों के त्रास के निवारक हों, दुःखों की राशि के दाहक हो।

नौवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(त्रोटक छन्द)

तुम ध्यावत शाश्वत व्याधि दहै, तुम पूजत ही पद पूज लहै।
शरणागत 'संत' उभारन हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो ॥९॥

हे भगवन् ! आपका ध्यान करते ही अनादिकालीन शाश्वत व्याधियाँ जल जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं और तुम्हारी पूजा करते ही पूजन करनेवाले स्वयं पूज्य हो जाते हैं।

संत कवि कहते हैं कि आप शरण में आये हुए जीवों के उद्धार करनेवाले हो, शरणागतों को उभारनेवाले हो। सुख के कारणरूप ऐसे सभी सिद्धों को बारंबार नमस्कार करता हूँ।

पहली पंक्ति में समागत तुम पूजत ही पद पूज लहे ह्य यह प्रयोग भी कम महत्त्व का नहीं है। इसमें इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि हे भगवन् ! तुम इतने महान हो कि जो तुम्हारे चरणों की पूजा करता है; लोग उसकी पूजा करने लगते हैं।

तात्पर्य यह है कि आपकी पूजा ही इतनी महान है तो फिर आपकी महानता का क्या कहना ?

जयमाला के अन्त में आनेवाला दोहा इसप्रकार है ह

(दोहा)

सिद्धवर्ग गुण अगम हैं, शेष न पावें पार।

हम किंह विधि वरणन करैं, भक्ति भाव उर धार ॥१०॥

सिद्धभगवान के गुण अगम हैं। उनका पार पाने को शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं। तो फिर हम उनका वर्णन कैसे कर सकते हैं? इसलिए हृदय में भक्तिभाव धारण करके ही संतोष कर रहे हैं।

हे भगवान् ! आपके गुणों को हमारी अल्पबुद्धि द्वारा न तो पूरी तरह जाना ही जा सकता है और न उन्हें वाणी से व्यक्त ही किया जा सकता है। जब वे हमारे ज्ञानगम्य ही नहीं हैं तो फिर हम उनका वर्णन कैसे कर सकते हैं ?

जगत में कहा जाता है कि शेषनाग के हजार जिह्वायें होती हैं। जब वह हजार जीभोंवाला शेषनाग भी आपके गुणों के पार को नहीं पा सकता तो फिर हम क्या चीज हैं।

इसलिए अब हम तो अपने हृदय में आपके प्रति भक्तिभाव को धारण करके ही संतुष्ट हैं।

●

तीसरी पूजन की जयमाला

तीसरी जयमाला के आरंभ में दो दोहे हैं; उनमें से पहला दोहा इसप्रकार है ह

(दोहा)

पंच परमपद ईश हैं, पंचमगति जगदीश।

जगतप्रपंच रहित बसे, नमूँ सिद्ध जग ईश ॥१॥

हे पंचमगति अर्थात् सिद्धदशा प्राप्त जगत के ईश्वर ! जगत के सभी प्रपंचों से रहित, स्वयं में वास करनेवाले जो ये पाँच परमपद हैं, परमेष्ठी पद हैं; वे सभी ईश्वरीय पद हैं; उन सभी, जगत के ईश्वर, सिद्ध भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ।

विगत दूसरी जयमाला के प्रथम दोहे में पंच परम परमात्मा कहकर पंचपरमेष्ठी को याद किया है और नीचे की पंक्ति में उन्हें जगत के प्रपंचों से रहित बताया है और इस तीसरी जयमाला के प्रथम दोहे की प्रथम पंक्ति में पंच परमपद ईश कहकर पंचपरमेष्ठी को याद किया है तथा दूसरी पंक्ति में जगत के प्रपंचों से रहित बताया गया है।

लगता है कवि संतलालजी के चित्त में पंचपरमेष्ठी इसप्रकार बसे हुए हैं कि वे सिद्धों को स्मरण करते समय पंचपरमेष्ठी को कभी नहीं भूलते। तथा वे पंचपरमेष्ठी जगत प्रपंचों से दूर रहते हैं ह्य यह भी बताते हैं।

लगता है कवि जगत प्रपंचों में उलझे उन लोगों से कुछ कहना चाहते हैं कि जो स्वयं को पंच परमेष्ठी में मानते हैं, पर...

कविवर सन्तलालजी की दृष्टि में दिगम्बर संतों का जगत के प्रपंचों में नहीं उलझना सबसे बड़ी क्वालिटी है और सन्तों का जगत के प्रपंचों में उलझना सबसे बड़ी डिस्क्वालिटी है।

तीसरी पंक्ति भी उक्त दोनों छन्दों में लगभग समान ही है। एक में है ह्य नमो सिद्ध सुखकंद और दूसरे में है ह्य नमो सिद्ध जग ईश।

दोनों छन्दों में सिद्धों को नमस्कार किया गया है। इसप्रकार दोनों छन्दों की तीन पंक्तियाँ तो लगभग समान ही हैं।

उक्त दोहों में जो विषयवस्तु प्रस्तुत की गई है; उससे प्रतीत होता है कि संत कवि के हृदय में सिद्ध भगवान के साथ-साथ पंचपरमेष्ठी भी तिल में तेल की भाँति व्याप्त हैं।

दूसरा दोहा इसप्रकार है ह

(दोहा)

परमब्रह्म परमात्मा, परमज्योति शिवथान ।

परमात्म पद पाड़यो, नमों सिद्ध भगवान ॥२॥

स्वभाव से ही परमज्योतिस्वरूप, मुक्ति में रहनेवाले हे परमब्रह्म परमात्मा ! आपने पर्याय में भी परमात्मपद प्राप्त कर लिया है; अतः सिद्धदशा को प्राप्त हे सिद्ध भगवान ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

इस दोहे में मात्र यही कहा गया है कि हे सिद्ध भगवान ! आप स्वभाव से परमात्मा तो अनादि से ही थे, अब पर्याय में भी परमात्मा बन गये हैं। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय हू दोनों ही दृष्टि से परमपद को प्राप्त हे सिद्ध परमात्मा ! आपको बारंबार नमस्कार हो।

यह तो आप जानते ही हैं कि परमात्मा दो प्रकार के होते हैं ह
१. कारणपरमात्मा, २. कार्यपरमात्मा।

१. जिसमें अपनापन स्थापित करने का नाम सम्यग्दर्शन, जिसे जानने या निजरूप जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है और जिसमें लीन होने का नाम सम्यक्चारित्र है; वह, पर और पर्याय से भिन्न, अनादि-अनन्त त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा ही कारणपरमात्मा है।

२. अरहंत और सिद्धदशा प्राप्त आत्मा को कार्यपरमात्मा कहते हैं।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि कारणपरमात्मा तो प्रत्येक आत्मा है ही; पर कार्यपरमात्मा मात्र अरहंत और सिद्ध भगवान ही हैं।

इसप्रकार यह सहजसिद्ध ही है कि सिद्धदशा को प्राप्त जितने भी

आत्मा हैं; वे सभी कारणपरमात्मा के साथ-साथ कार्यपरमात्मा भी हैं। इस छन्द में ऐसे सिद्ध भगवन्तों को ही नमस्कार किया गया है।

आगे के सभी छन्द कामिनी मोहन छन्द में हैं; उनमें से आरंभ का छन्द इसप्रकार है ह

(कामिनी मोहन)

जन्म-मरण कष्ट को टारि अमरा भये,

जरादि रोगव्याधि परिहार अजरा भये।

जय द्विविध कर्ममल जार अमला भये,

जय दुविध टार संसार अचला भये ॥३॥

हे सिद्ध भगवान ! आप जन्म-मरण के कष्टों को टालकर अमर हो गये हैं और बुढ़ापा आदि व्याधियों को, रोगों को दूर करके अजर हो गये हैं। इसप्रकार आप अजर-अमर हो गये हैं।

इसीप्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म हू इन दो प्रकार के कर्मों को जला के अमल हो गये हैं और द्रव्यसंसार और भावसंसार हू इन दो प्रकार के संसार को टालकर आप अचल हो गये हैं।

इसप्रकार हे सिद्ध भगवान ! आप अजर-अमर तथा अमल-अचल हो गये हैं।

तात्पर्य यह है कि अब आपको न कभी बुढ़ापा आयेगा और न आप कभी मरेंगे; क्योंकि ये अवस्थाएँ तो देहधारियों को होती हैं और आप तो देह से रहित हो गये हैं, विदेही हो गये हैं, अदेही हो गये हैं।

इसीप्रकार मोह-राग-द्वेषरूप भाव भावकर्म हैं, मैल हैं, मल हैं तथा ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भी इन्हीं मोह-राग-द्वेषादि भावों से बँधते हैं और मोहकर्म के उदय से मोह-राग-द्वेषभाव होते हैं; अतः ये द्रव्यकर्म भी मैल ही हैं; क्योंकि इनके आगे भी मोह-राग-द्वेषरूप मैल है और पीछे भी वहीं मोह-राग-द्वेष हैं।

हे सिद्ध भगवान ! आपने द्रव्यकर्म और भावकर्म दोनों का नाश कर दिया है, अभाव कर दिया है; अतः आप अमल हो गये हैं।

उसीप्रकार स्त्री-पुत्रादि, धन-धान्यादिरूप द्रव्य संसार और पर में एकत्व-ममत्वरूप तथा पच्चीस कषायरूप भाव संसार टाल के, दूर कर, छोड़कर चतुर्गति के परिभ्रमण से मुक्त होकर अचल पंचमगति को प्राप्त हो गये हैं; अतः अब आपको कभी भी अपने स्वभाव से और अपने स्थान से भी च्युत नहीं होना होगा; अतः आप अचल हो गये हैं।

इसप्रकार आप पूर्णरूप से अजर, अमर, अमल और अचल हो गये हैं। अनन्तकाल तक के लिए अनन्त सुखी हो गये हैं।

जरा एक ऐसा रोग है, जो जीवन को जर-जर कर देता है; यह किसी व्यक्ति पर जरा भी कृपा नहीं करता। जरा को देखकर जरा ग्रस्त लोग ही नहीं, अच्छे-अच्छे जवानों का भी दिल काँप उठता है।

एक अत्यन्त वृद्ध महिला को देखकर, उसके रूप में इस जरा को देखकर महात्मा बुद्ध भी कह उठे थे कि ह

देखी मैंने आज जरा।

क्या ऐसी ही हो जावेगी मेरी यशोधरा ॥^१

मैंने आज जर-जर जरा देखी है, चलता-फिरता बुढ़ापा देखा है। क्या एक दिन मेरी पत्नी यशोधरा भी ऐसी ही हो जावेगी ?

एक दिन सभी को बूढ़ा होना ही है। इसप्रकार जर-जर जरा को देखकर वे जगत से विरक्त हो गये थे।

कविवर दौलतरामजी तो यहाँ तक लिखते हैं ह

अर्धमृतकसम बूढ़ापनो कैसे रूप लखे आपनो ।^२

यह बुढ़ापा तो अधमरे के समान है, ऐसे बुढ़ापे में अपने आत्मा का स्वरूप कैसे देखा जा सकता है ?

इससे बचने की कोई दवा नहीं है, जंत्र-मंत्र नहीं है; एकमात्र मरने पर ही इससे छुटकारा मिल सकता है। पर कोई मरना नहीं चाहता; क्योंकि मरने से तो अधमरे ही अच्छे हैं।

१. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा नामक महाकाव्य

२. छहढाला, पहली ढाल, छन्द १४

हम चाहे न चाहे, पर हम प्रतिसमय मरने की ओर ही दौड़ रहे हैं। आखिर एक न एक दिन इस निगोड़ी मौत को भी गले तो लगाना ही पड़ेगा। न तो हम बुढ़ापे से ही भाग सकते हैं और न मौत से। आखिर सामना तो दोनों का ही करना है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसो, अब बरसों लगनेवाले नहीं हैं।

हे भगवान ! आपने दोनों को ही जीत लिया है; अतः अजर-अमर हो गये हैं; इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ।

यद्यपि देवताओं ने जरा को जीत लिया है; पर भले ही उन्हें अमर कहा जाता हो, पर मरना तो उन्हें भी पड़ता ही है।

देह के जर-जर होने को जरा और देह के वियोग को मरण कहते हैं। हे सिद्ध भगवान ! जब आपने देह का ही त्याग कर दिया, विदेह हो गये, अदेह हो गये तो फिर कैसा बुढ़ापा और कैसी मौत ?

सन्त कवि ने आपको यहाँ अजरा-अमरा कहा है। ऐसी खड़ी भाषा में आपको बुलाना अच्छा लगता है क्या ? अरे, वे आपको अजरा-अमरा कहने की जगह अजर-अमर भी तो कह सकते थे।

हाँ, कह सकते थे, अवश्य कह सकते थे; पर अजरा-अमरा कहने में जो नजदीकी है, वह अजर-अमर कहने में थोड़े ही है। लगता है कवि आपसे बहुत नजदीकी अनुभव करते थे, तभी तो ऐसी तू-तड़ाक भाषा का उपयोग करते हैं।

बात यहीं समाप्त नहीं हो गई। आगे भी वे आपसे इसी भाषा में बात करते हैं। अन्यथा अगली ही पंक्ति में आपको अमला-अचला कह कर क्यों पुकारते। अरे, भाई ! यदि वे चाहते तो अमल-अचल भी कह सकते थे; पर नहीं, लगता है कि वे अपनी पर ही उतर आये हैं और कहे जा रहे हैं कि आप अजरा हैं, अमरा हैं, अमला हैं और अचला हैं।

यह संत महाकवि की सरवा भाव की भक्ति है; जिसमें भक्त भगवान से मित्रवत् बात करता है।

हिन्दी साहित्य में सखाभाव की भक्ति के लिए महाकवि सूरदासजी प्रसिद्ध हैं।

अजर, अमर और अमल तो अरिहंत भी होते हैं; पर वे अचल नहीं होते। होते तो विहार कैसे करते ?

चार घातिया कर्मों के अभाव होने से वे अमल तो होते हैं, पर चार अघातिया कर्मों के सद्भाव से अचल नहीं होते। यों भी कह सकते हैं कि मोह मल के अभाव से, मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अभाव से या मिथ्यात्व और २५ कषायों के अभाव से अरहंत अमल तो हैं, पर अचल नहीं; किन्तु आठों कर्मों के अभाव से आप अमल के साथ-साथ अचल भी हैं। हे सिद्ध भगवन् ! मेरे आदर्श तो एक आप ही हैं।

मैं तो अजर, अमर, अमल और अचल हूँ यह सब एक साथ ही होना चाहता हूँ हूँ ऐसा संत कवि कह रहे हैं।

अब आगामी छन्द में विरोधाभास अलंकार में बात करते हैं।

जब ऐसा लगे ये परस्पर विरुद्ध बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं; तब विरोधाभास अलंकार होता है।

वह आगामी छन्द इसप्रकार है हूँ

(कामिनी मोहन)

जय जगतवास तज जगतस्वामी भये,

जय बिना नाम थिर परमनामी भये।

जय कुबुद्धिरूप तज सुबुद्धिरूपा भये,

जय निषधदोष तज सुगुण भूपा भये ॥४॥

हे भगवान ! यद्यपि आप जगतवास को छोड़कर सिद्धशिला पर चले गये हैं; तथापि जगत के स्वामी हो गये हैं। हे सभी सिद्ध भगवान! यद्यपि आप में से किसी का कोई नाम नहीं है; इससे आपको आपके पूर्वभव के नाम से ही संबोधित करना पड़ता है; तथापि आप जगत में नामी हैं, परमनामी हो गये हैं।

जगत में जिसका नाम बहुत प्रसिद्ध हो जाता है, उसे नामी कहते हैं, पर आप अकेले नामी नहीं, परमनामी हो गये हैं।

हे भगवान ! आपने कुबुद्धियों को छोड़ दिया है और सुबुद्धिरूप हो गये हैं। तात्पर्य यह है कि मिथ्याज्ञान को छोड़कर सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं। आप निषध आदि दोषों को तजकर सद्गुणों के राजा हो गये हो। इसलिए आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

ध्यान रहे यहाँ एक छन्द में चार बार जय शब्द आया है। तात्पर्य यह है कि हे सिद्ध भगवान ! आपकी जय हो, जय हो, बारम्बार जय हो।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि इसमें विरोधाभास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

जो व्यक्ति जगत के वास को, आवास को छोड़कर चला गया हो; वह जगत का स्वामी कैसे हो सकता है ? इसप्रकार यहाँ विरोध का आभास हो रहा है, परन्तु बात ऐसी है कि सिद्ध भगवान इस जगत को छोड़कर मुक्ति में चले गये हैं, सिद्धशिला पर विराजमान हो गये हैं; फिर भी यह जगत उन्हें अपना स्वामी मानता है। इसलिए हे भगवन् ! आप जगत का वास तजकर भी जगत के स्वामी हैं।

इसीप्रकार सिद्ध दशा में किसी का कोई नाम नहीं होता; बस सभी को सिद्ध भगवान ही कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वहाँ नाम से किसी की पहिचान नहीं होती। फिर भी आप नामी हो गये हैं, परमनामी हो गये हैं। यह विरोधाभास है; क्योंकि जिसका नाम ही न हो, वह नामी कैसे हो सकता है; परन्तु आप जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं और सर्वश्रेष्ठ को ही तो परमनामी कहते हैं।

इसप्रकार हे सिद्ध भगवान ! आप जगत के स्वामी हैं, परमनामी हैं, सम्यग्ज्ञानस्वरूप हैं, केवलज्ञान स्वरूप हैं और अपने अनन्तगुणों की समाज के राजा हैं।

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है हूँ

(कामिनी मोहन)

कर्मरिपु नाशकर परम जय पाड़े,
लोकत्रयपूरि तुम सुजस घन छाड़े।
इन्द्र नागेन्द्र धर शीश तुम पद जजै,
महा वैरागरस पाग मुनिगण भजै ॥५॥

हे सिद्ध भगवन् ! आपने कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करके सर्वोत्कृष्ट जीत प्राप्त की है। इसलिए तीन लोक में आपके यशरूपी बादल छा गये हैं। इन्द्र और नागेन्द्र आपके चरणों में शीश रखकर आपकी पूजा करते हैं और महावैराग्य रस से पगे हुए मुनिराज आपका भजन करते हैं, आपको भजते हैं।

जगत की जीत क्षणभंगुर होती है, उसे हार में बदलते देर नहीं लगती। अर्द्ध चक्रवर्ती प्रतिनारायण तीन खण्डों को जीतकर अर्द्ध चक्रवर्ती सम्राट बनते हैं; पर वे भी नारायण से हार जाते हैं। रावण भरत क्षेत्र के तीन खण्ड जीतकर अर्द्ध चक्रवर्ती सम्राट बना था, अन्त में राम-लक्ष्मण से हार गया। लोक में जीत और हार तो लगी ही रहती है; पर आपने ऐसी उत्कृष्ट जीत प्राप्त की है जो कभी हार में नहीं बदलेगी। इसलिए यह आपकी जीत, परमजीत है; आपकी जय, परमजय है।

इस छन्द में यह बताया गया है कि ऊर्ध्वलोक के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित रागी इन्द्र, अधोलोक के नागेन्द्र तथा मध्यलोक के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित वीतरागी मुनिराजों का समूह आपकी पूजा करता है, आपका भजन करता है। रागी इन्द्र-नागेन्द्र पूजा करते हैं और वीतरागी मुनिराज आपका भजन करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आपकी महिमा तीन लोक में छाई है।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(कामिनी मोहन)

विघनवन दहन द्यो अघन घन पौन हो,
सघन गुणरास के वास को भौन हो।

शिवतिय वशकरन मोहिनी मंत्र हो,
काल क्षयकार बेताल के यंत्र हो ॥६॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप विघ्नरूपी जंगल को जलाने के लिए दावाग्नि के समान हो, पुण्य-पापरूपी घने बादलों को उड़ाने के लिए तूफानी पवन हो, आँधी हो और अत्यन्त सघन अनन्त गुणों की राशि को रखने के लिए विशाल भवन हो, मुक्तिरूपी पत्नी को वश में करने के लिए मोहित करनेवाले मंत्र हो, मोहनी मंत्र हो और काल को क्षय करने के लिए, मृत्यु को मारने के लिए बेताल के यंत्र हो।

तात्पर्य यह है कि आप विघ्न विनाशक हो, पुण्य-पाप को क्षय करनेवाले हो, अनन्त गुणों के घर हो, मुक्तिवधु को रिंझाने के लिए मोहनी मंत्र हो और मृत्यु विनाशक यंत्र हो।

जगत में यह प्रसिद्ध है कि दावाग्नि भयंकर वनों की दाहक होती है, आँधी बादलों को बहा ले जाती है, अच्छी वस्तुएँ भवन में सम्हाल के रखी जाती हैं, महिलाओं को वश में करने के मंत्र होते हैं और यमराज को वश में करने अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए तंत्र तोटका होते हैं।

हे सिद्ध भगवन् ! विभिन्न अपेक्षाओं से ये सब आप ही हो।

तात्पर्य यह है कि जितनी भी विपत्तियाँ लोक में हैं, उन सबके निवारक एकमात्र आप ही हो; एक आपको छोड़कर मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना है; क्योंकि सौ मर्ज की एक दवा एकमात्र आप ही हो।

यहाँ सिद्ध भगवान को अनन्त गुणों का भवन बताया है। भक्तामर भक्तिकाव्य में कहा गया है ह

(बसंततिलका)

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-

स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।

दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः

स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

हे आदिनाथ भगवन् ! इसमें क्या आश्चर्य है कि आपमें सम्पूर्ण गुणों ने निरवकाशरूप से आश्रय लिया है। वे गुण आपमें ठसाठस भर गये हैं, रंचमात्र भी अवकाश नहीं रहने दिया और एक भी दोष आपके पास नहीं आये; क्योंकि उन्हें आश्रय देनेवाले तो गली-गली में बैठे हैं और वे लोग दोषों को सम्मानपूर्वक आश्रय देते हैं। इसलिए उन्हें अभिमान हो गया। वे बिना बुलाये कहीं भी जाने को तैयार नहीं थे। इसलिए वे दोष स्वप्न में भी आपके पास नहीं आये। हाँ, गुणों को पूछनेवाला कोई नहीं था, सो वे आपमें ही समा गये।

तात्पर्य यह है कि आपमें गुण तो अनन्तों हैं; पर दोष एक भी नहीं।

आगामी सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह्र

(कामिनी मोहन)

कोटिथित क्लेश को मेटि शिवकर रहो,
उपल की नकल हो अचल इक थल रहो।
स्वप्न में हू न निज अर्थ को पावहीं,
जे महा खल न तुम ध्यान धरि ध्यावहीं ॥७॥

हे सिद्ध भगवन् ! करोड़ों वर्ष से स्थित करोड़ों क्लेशों को मेंटकर कल्याण करनेवाले एकमात्र आप ही हो। आप पत्थर के समान एक स्थल पर रहनेवाले हो, आप पत्थर की हुबहू नकल हो; क्योंकि जिसप्रकार पत्थर एक स्थान पर पड़ा रहता है; उसीप्रकार आप भी एक स्थान पर ही अनंतकाल तक एक ही स्थिति में रहते हो, आपकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं होता, वैसे के वैसे ही विराजमान रहते हो।

जो महादुष्ट लोग तुम्हारा ध्यान नहीं करते; वे लोग स्वप्न में भी अपने भगवान आत्मा की प्राप्ति नहीं कर पाते। अपने आत्मा की प्राप्ति उन्हीं लोगों को होती है; जो आपका ध्यान धरते हैं।

देखो, यहाँ भगवान की उपमा पत्थर से दे रहे हैं अथवा भगवान को पत्थर कहा जा रहा है। कहाँ पत्थर एकदम तुच्छ नाचीज और कहाँ

आप अनन्त गुणों के अखण्ड पिण्ड, आनन्द के रसकन्द, ज्ञान के घनपिण्ड, गुणों के गोदाम और अनंत शक्तियों के संग्रहालय। आप और पत्थर में क्या तुलना हो सकती है ?

अरे, भाई ! यहाँ सिद्ध भगवान की उपमा पत्थर से नहीं दी जा रही है। यहाँ पत्थर की एक स्थान पर पड़े रहनेरूप अचलता से सिद्ध भगवान की अचलता की उपमा दी गई है।

यहाँ मात्र अचलता की ही तुलना करनी, सर्वांगता की नहीं।

आगामी आठवाँ छन्द इसप्रकार है ह्र

(कामिनी मोहन)

आपके जाप बिन पाप सब भेंटही,
पाप की ताप को पाप कब मेंटही।
'संत' निज दास की आस पूरी करो,
जगत से काढ़ निजचरण में ले धरो ॥८॥

हे भगवन् ! आपका जाप किये बिना सभी पापों से भेंट होती है; क्योंकि बताओ इस जगत में पाप के कारण जो ताप-संताप पैदा होता है, वह संताप पाप करने से कैसे मिट सकता है ?

तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार खून से लगा धब्बा खून से ही धोने से कपड़ा साफ नहीं हो सकता; उसीप्रकार एक पाप करने से जो संताप पैदा होता है, दूसरा पाप करने से वह संताप कैसे मिट सकता है ?

जगत में प्रायः देखा जाता है कि पाप के उदय से मिली गरीबी, दरिद्रताओं को दूर करने के लिए हम चोरी आदि पाप करने लगते हैं। इस बात का विचार ही नहीं करते कि पाप से प्राप्त दरिद्रता का नाश पाप करने से कैसे मिट सकता है ?

पाप के उदय से प्राप्त होनेवाली दरिद्रता तो हे भगवान आपके जाप से मिट सकती है।

अन्त में कवि संतलालजी कहते हैं कि हे भगवान ! मैं आपका दास हूँ। आप अपने इस दास की आशा को अवश्य पूरी करना।

मेरी आशा मात्र इतनी ही है कि मैं इस संसार से ऊब गया हूँ और अब आपके चरणों में आना चाहता हूँ। अतः हे भगवन् ! आप मुझे इस संसार सागर से निकाल कर अपने चरणों में ले लो।

इसके बाद कविराज संत अन्त में एक घत्ता नामक छन्द लिखते हैं; जो इस जयमाला का अन्तिम छन्द है।

उक्त नौवाँ छन्द मूलतः इसप्रकार है ह

(घत्ता)

जय अमल अनूपं, शुद्ध स्वरूपं, निखिल निरूपं धर्मधरा।

जय विघ्न नशायक, मंगलदायक, तिहुँ जगनायक परमपरा ॥१॥

हे भगवन् ! आप सभी प्रकार के मोह-राग-द्वेषरूप मैलों से रहित हो, अमल हो और आपकी उपमा जगत के किसी भी पदार्थ से नहीं दी सकती है, इससे आप अनुपम हो। आपका स्वरूप शुद्ध है; क्योंकि आप सभी प्रकार के पुण्य-पाप से भी दूर हैं। धर्म की पृष्ठभूमि में जो कुछ आता है; उक्त सम्पूर्ण वस्तुस्वरूप आपने निरूपित किया है, दिव्यध्वनि के माध्यम से जगत के सामने प्रस्तुत किया है; अतः आपकी जय हो, जय हो।

हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण विघ्नों के विनाशक हो, मंगल देनेवाले हो, सभी का भला करनेवाले हो और यदि हम परम्परा से कहें, व्यवहारनय से कहें तो आप तीन लोक के नायक हो।

निश्चयनय से तो आप सबकुछ छोड़ चुके हो; क्योंकि आप यह बहुत अच्छी तरह जानते हो कि इस जगत में मेरा कुछ भी नहीं है; क्योंकि कोई किसी का कुछ होता ही नहीं है; फिर भी परम्परा से यह कहा जाता रहा है कि आप तीन लोक के नाथ हो। इसलिए मैं भी कहता हूँ कि आप तीन लोक के नाथ हो।

वस्तुतः निश्चयनय से तो कोई किसी का नाथ होता ही नहीं है।●

चौथी पूजन की जयमाला

चौथी पूजन की जयमाला के आरंभ में एक दोहा है; जो इसप्रकार है
(दोहा)

तीर्थकर त्रिभुवन धनी, जापद करत प्रणाम।

हम किह मुख वर्णन करें, तिन महिमा अभिराम ॥१॥

तीन लोक के मालिक तीर्थकर भी दीक्षा लेते समय जिसके चरणों में प्रणाम करते हैं, नमस्कार करते हैं; उन सिद्ध भगवन्तों की अभिराम महिमा का गुणगान हम किस मुख से कर सकते हैं।

तात्पर्य यह है कि सर्वोत्कृष्ट महान सिद्ध भगवन्तों की महिमा का वर्णन हम साधारण बुद्धि के धारक तुच्छ मनुष्य कैसे कर सकते हैं ?

कहा जाता है कि तीर्थकर अपनी गृहस्थ अवस्था में भी सिद्धों के अतिरिक्त किसी को भी नमस्कार नहीं करते और न किसी को धर्मोपदेश देते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि जब वे दीक्षा लेते हैं तो नमः सिद्धेभ्यः ह सिद्धों को नमस्कार हो ह मात्र इतना ही कहते हैं; ॐ नमः सिद्धेभ्यः नहीं कहते; क्योंकि ॐ में पंचपरमेष्ठी आ जाते हैं।

वे मात्र सिद्ध परमेष्ठी को ही नमस्कार करते हैं।

तीर्थकर गृहस्थ अवस्था में भी पूर्णता के अभिलाषी होते हैं; यही कारण है कि वे पूर्णता को प्राप्त सिद्धों को ही नमस्कार करते हैं; क्योंकि पूर्णता के लक्ष्य से ही पूर्णता की प्राप्ति होती है।

इसी बात को ध्यान में रखकर यहाँ यह बात कही गई है कि तीर्थकर भी जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं, उन सिद्ध परमात्मा की महिमा का वर्णन हम किस मुँह से कर सकते हैं ?

सिद्धदशा आत्मा की पूर्ण विकसित अवस्था है। एक आत्मा के विकास में जितना जो कुछ करना होता है या होना होता है; वह सब सिद्ध अवस्था में हो चुका है।

यद्यपि अरहंत अवस्था महान है; क्योंकि दिव्यध्वनि का लाभ तो उस अवस्था में ही प्राप्त होता है; तथापि वह अरहंत अवस्था सिद्ध अवस्था के समान पूर्ण विकसित अवस्था नहीं है। अभी उसमें बहुत कुछ होना बाकी है।

णमोकार महामंत्र में उन्हें प्रथम स्थान मात्र इसलिए दे दिया गया है कि उनसे हमें धर्मलाभ मिलता है, उनकी दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्म प्रचार होता है। सभी भव्यजीवों को आत्मकल्याण करने का अवसर प्राप्त होता है।

भले ही हमने उन्हें अपना सीधा उपकारी जानकर णमोकार मंत्र में प्रथम स्थान पर रख दिया हो, पर सिद्ध अवस्था की तुलना में वे द्वितीय स्थान पर ही रहेंगे; क्योंकि अभी उनके चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं। उनके शरीरादि का संयोग भी है। वे सिद्धों के समान अचल भी नहीं हैं।

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि आत्मा के विकास की सर्वोत्कृष्ट अवस्था सिद्धदशा ही है।

प्रश्न हूँ यदि आप बुरा न माने तो मैं एक प्रश्न पूछूँ।

उत्तर हूँ हम क्यों बुरा मानेंगे ? आप तो निशंक होकर पूछिए। यदि हमें आता होगा तो उत्तर दे देंगे; अन्यथा क्षमा याचना कर लेंगे।

प्रश्न हूँ यह तो ठीक ही है; क्योंकि आप उत्तर देने के लिए बाध्य तो हैं नहीं। हाँ, तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस सिद्धचक्र विधान में श्रीपाल-मैनासुन्दरी की चर्चा तो कहीं आई ही नहीं। ऐसा क्यों हुआ?

उत्तर हूँ अरे, भाई ! यह सिद्धचक्र पूजन विधान है; अतः इसमें सिद्धों की ही चर्चा मुख्य रूप से की गई है; तथापि निकट भविष्य में मोक्ष जाने वाले पंचपरमेष्ठियों को भी इसमें शामिल कर लिया है।

श्रीपाल-मैना सुन्दरी में से कोई भी परमेष्ठी नहीं थे; अतः उन्हें शामिल करना संभव नहीं था।

प्रश्न हूँ श्रीपाल व मैना सुन्दरी भविष्य के भगवान तो थे ही और आज तो वे सिद्ध अवस्था में ही हैं।

उत्तर हूँ बात तो तुम ठीक कहते हो; पर सिद्ध अवस्था के रूप में तो वे सब सिद्धों में शामिल ही हैं।

प्रश्न हूँ पर, उनका नाम तो कहीं नहीं आता।

उत्तर हूँ सिद्ध-अवस्था में किसी का कोई नाम होता ही नहीं है; सभी को सिद्ध भगवान इस नाम से ही पुकारते हैं। सो सिद्ध भगवान के रूप में तो नाम आता ही है।

प्रश्न हूँ फिर भी श्रीपाल व मैनासुन्दरी का नाम नहीं आया।

उत्तर हूँ श्रीपाल-मैनासुन्दरी तो एक गृहस्थ राजा-रानी के नाम हैं, वे नाम कैसे आ सकते थे। अरे, भाई ! इस रूप में तो आदिनाथ से लेकर महावीर तक के भी नाम नहीं हैं। फिर तो सभी के नाम आ जाते। किसी का भी, कोई नाम आते ही तो यह सिद्ध पूजन नहीं रहती।

प्रश्न हूँ इस सिद्धचक्र विधान के प्रताप से श्रीपाल का कुष्ठ रोग मिट गया था। कहा जाता है कि उनकी धर्मपत्नी मैनासुन्दरी ने यह सिद्धचक्र विधान किया था, कराया था; इसके प्रताप से कोटिभट राजा श्रीपाल और उनके साथियों का कुष्ठ रोग दूर हो गया था। अतः उनकी चर्चा तो होनी ही चाहिए थी।

उत्तर हूँ तुम ठीक कहते हो। पर सिद्धचक्र विधान पूजन की रचना करनेवाले कवि सन्तलालजी ने कहीं भी कोई चर्चा नहीं की।

यह उनकी कोई गलती है या उनकी चर्चा नहीं करने से विधान में कोई कमी रह गई है हूँ यह सोचने के स्थान पर यह खोजना अधिक आवश्यक है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ?

लिखकर या बोलकर तो सभी कहते हैं; पर ज्ञानी-धर्मात्मा लोग किसी विषय पर कुछ भी न लिखकर, न कहकर भी बहुत कुछ कहते हैं; उसे जानना बहुत जरूरी है; क्योंकि वह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

यह तो हो नहीं सकता कि श्रीपाल-मैनासुन्दरी के कथानक से कवि अपरिचित हो; क्योंकि यह तो बहुचर्चित कथानक है; फिर भी

इतना बड़ा विधान लिखकर भी उनकी चर्चा नहीं करने में कुछ न कुछ कारण तो होना ही चाहिए।

जहाँ तक मैं समझता हूँ कि सिद्धों के स्तवनरूप इतने महान कार्य को एक शारीरिक रोग की दवा के रूप में प्रस्तुत करना उन्हें इष्ट नहीं था। आत्मीक रोगों के निवारण की चर्चा तो वे करते ही हैं।

आठवीं पूजन की जयमाला में लिखा है ह

तुम महामंत्र विष विघ्नजार, अघ रोग रसायन कहो सार।

आप विघ्नरूपी विष को उतारने के महामंत्र हो और पुण्य-पापरूप रोग के निवारण को सारभूत रसायन हो।

तीसरी पूजन की जयमाला में भी लिखा है ह

जन्ममरण कष्ट को टारि अमरा भये।

जरादि रोग व्याधि परिहार अजरा भये ॥

जन्म-मरणरूपी कष्ट को टालकर अमर हो गये हो और बुढ़ापा आदि रोग को दूर कर अजर हो गये हो।

उक्त पंक्तियों में पुण्य-पापरूपी आत्मिक रोग और बुढ़ापा आदि शारीरिक रोगों की बात तो आती है; पर कुष्ठ रोग की बात नहीं आती।

आपने अपने जरादि रोग नाश कर दिये हैं, यह तो आता है; पर आपने दूसरों के जरादि रोग को ठीक किया है ह यह बात नहीं आती।

दूसरे के संदर्भ में जब भी कोई बात आती है तो यही आता है कि आपके गुणगान से, आपकी भक्ति से उसे लाभ हो गया। यह नहीं आता कि आपने कुछ कर दिया।

जैनदर्शन की मान्यतानुसार भगवान तो किसी का कुछ करते ही नहीं हैं; एक द्रव्य भी दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं करता।

प्रश्न ह श्रीपाल आदि का कुष्ठ रोग तो सिद्धचक्र मण्डल के प्रभाव से ठीक हुआ ही था। श्रीपालचरित्र में साफ-साफ लिखा है।

उत्तर ह श्रीपालचरित्र में लिखा है तो अवश्य हुआ होगा। हुआ होगा नहीं, हुआ ही था; क्योंकि आगम में लिखा है। इसमें मुझे कोई

शंका-आशंका नहीं है; पर एक बात है कि यह बहुत पुरानी घटना है, चौथे काल की।

इस एक घटना से हम कबतक काम चलायेंगे ? अभी कोई ताजी घटना हो तो बताइये न ?

एक बार जब मैं इस घटना की चर्चा कर रहा था तो एक डॉक्टर साहब बोले ह “अरे, भाई ! आप लोग ऐसी बातें कहने से पहले हम से तो बात कर लिया करे।”

मैंने कहा ह “क्यों, क्या बात है ?”

तब वे कहने लगे ह “कुष्ठ रोग के कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करते हैं तो उसके बीसों वर्ष बाद पता चलता है। इसीप्रकार जब उसका इलाज आरंभ होता है तो लाभ भी बहुत धीमी गति से होता है, ठीक होने में भी बीसों वर्ष लग जाते हैं।

इसप्रकार अधिकांश कुष्ठ रोगी कुष्ठ रोग के साथ ही मरते हैं।”

मैंने कहा ह “श्रीपाल का तो तत्काल ठीक हुआ ही था।”

तब वे कहने लगे ह “यदि आपके पास ऐसा कोई मंत्र या पूजन-विधान है; जिससे क्षण भर में कुष्ठ रोग ठीक हो सकता है तो उसका प्रयोग करके बताइये। यदि ऐसा हो सका तो एक दिन में कम से कम आधा विश्व जैनी हो जायेगा।

पहले चार कुष्ठ रोग विशेषज्ञ डॉक्टर टी.वी. पर, एक मरीज का निरीक्षण करके यह प्रमाणित करें कि हाँ, यह कुष्ठ रोगी है; उसके बाद आप अपना मंत्र पढिये, पूजन-विधान कराइये, भगवान के अभिषेक का जल उन मरीजों पर छिड़किये।

जब मरीज ठीक हो जाय, कुष्ठ रोग मिट जावे, तब टी.वी. पर वे डॉक्टर पूरी तरह जाँच करके बतावें कि ये मरीज पूरी तरह ठीक हैं, इनका कुष्ठ रोग मिट गया है।

यदि परीक्षा में पास हो गये तो सारे टी.वी. चैनल निःशुल्क रूप से दिनभर टी.वी. पर दिखायेंगे और जो देखेगा, वह जैनी बन जावेगा।

आप जानते हैं सम्पूर्ण विश्व में जितने कुष्ठ रोगी हैं, उनमें आधे से अधिक भारत में हैं। उनके निःशुल्क इलाज और खाने-पीने रहने की सारी निःशुल्क व्यवस्था भारत सरकार को करनी पड़ती है।

आपके इस चमत्कार से उसके तो अरबों रुपये बच जायेंगे। भारत सरकार आपको बुलाकर भारतरत्न की उपाधि से सम्मानित करेगी।”

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ ?

तब वे भाई साहब बोले ह “किसी को भरोसा ही नहीं है तो काम होगा कैसे ?”

मैंने कहा ह “आप बात तो ठीक ही कहते हैं; पर काम श्रद्धा से होता है या विधान से ? श्रद्धा तो हमें नहीं होगी, आपको नहीं होगी; पर क्या किसी को भी श्रद्धा नहीं है। एक करोड़ जैनियों में किसी को तो श्रद्धा होगी। इतने विद्वान, इतने साधु-संत; इन सबको भी श्रद्धा नहीं है ह यह कैसे माना जा सकता है ?

समयसार में तो लिखा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं करता। न करता है और न कर सकता है।

इस बात की श्रद्धा करें या उस बात की ?”

तब वे बोले ह “हो सकता है सन्तलालजी ने इन्हीं प्रश्नों से बचने के लिए श्रीपाल-मैनासुन्दरी की चर्चा नहीं की हो ? पर आपको तो करना ही चाहिए। इससे सिद्धचक्र विधान की महिमा बढ़ती है।”

मैंने कहा ह “जिसकारण से सन्तलालजी ने चर्चा नहीं की, हम भी उसी कारण से चर्चा नहीं करते। जिस बात को सिद्ध करके न बता सकें, उसकी चर्चा करने से क्या लाभ है ?”

एक बात यह भी तो है कि तद्भव मोक्षगामी सनत्कुमार चक्रवर्ती को मुनि अवस्था में सात सौ वर्ष तक कुष्ठ रोग रहा था। यदि कुष्ठ रोग का इलाज इतना सहज व सरल है तो उन्हें इतने वर्ष तक कष्ट क्यों सहना पड़ा। क्या उस समय कोई मैनासुन्दरी जैसा नहीं था, जो सिद्धचक्र

विधान करके यह काम कर देता। अरे, उनके तो एक से एक सुन्दर और धर्मात्मा ९६ हजार रानियाँ थीं। उन्होंने ऐसा कुछ क्यों नहीं किया ?

वस्तुतः बात तो यह है कि जब कोई कार्य होना होता है; तो निमित्त भी उसीप्रकार के सहज प्राप्त हो जाते हैं। श्रीपाल का कुष्ठ रोग ठीक होना था तो तदनुकूल निमित्त भी मिल गये और सनत्कुमार चक्रवर्ती का नहीं होना था तो निमित्त भी नहीं मिले।

ऐसा ही सब जगह समझ लेना चाहिए।

सिद्धचक्र विधान का असली लाभ तो भवरोग का निवारण है, जन्म-जरा-मृत्यु रोग का निवारण है।

सिद्ध समान अपने आत्मा की आराधना करने से भवरोग मिटता ही है; जन्म-जरा-मृत्यु से बचाव होता ही है।

अतः हमारा निवेदन तो यही है कि सिद्धचक्र विधान को सिद्धों के गुणगान और भक्ति तक ही सीमित रहने दें; इसे किसी बीमारी की दवाई न बनावें।

इसके बाद पूरी जयमाला चौपाई छन्दों में हैं।

पहला छन्द इसप्रकार है ह

(चौपाई)

जय भविकुमुदन मोदन चंदा, जय दिनन्द त्रिभुवन अरविंदा।

भवतपकरण शरण रसकूपा, मद ज्वर जरन हरण घनरूपा।।२।।

हे सिद्ध भगवन् ! आप भव्यरूप कुमुदों को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के समान हो और तीन लोकरूपी कमलों को विकसित करने के लिए दिन को आनन्द देनेवाले सूर्य के समान हो। आपकी जय हो, जय हो।

कमलों की जातियाँ दो प्रकार की होती हैं ह १. एक वे जिनके फूल सूर्य के उगने पर प्रफुल्लित होते हैं, खिलते हैं; उन्हें कमल कहते हैं और २. दूसरी वे जिनके फूल चन्द्रमा की चाँदनी में खिलते हैं, उन्हें कुमुद कहते हैं।

उक्त पंक्तियों में यह कहा गया है कि हे सिद्ध भगवन् ! आप भव्यरूपी कुमुदों को खिलानेवाले चन्द्रमा हो और तीन लोकरूपी कमलों को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य हो ।

लोक में सूर्य और चन्द्रमा को महान माना जाता है । उनकी महिमा से यह सम्पूर्ण लोक भलीभाँति परिचित है । यहाँ सिद्ध भगवान को उन सूर्य और चन्द्रमा से भी महान बताया जा रहा है; क्योंकि सूर्य सूर्य है और चन्द्रमा चन्द्रमा । सूर्य चन्द्रमा नहीं और चन्द्रमा सूर्य नहीं ।

हे सिद्ध भगवान आप सूर्य भी हो और चन्द्रमा भी ।

हे सिद्ध भगवन् ! आप संसारताप को करनेवाले कारणों को हरण करने के लिए शरणरूप रस के कुंआ हो और मान कषायादि के मदरूपी ज्वर की जलन के हरण के लिए आप घन अर्थात् बादलों के रूप में हो ।

जल इस जगत में जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है । उसके बिना लोक में हाहाकार मच जाता है । इसलिए यह जगत जल की महिमा से भलीभाँति परिचित हैं । जल कुएं से मिलता है और बादल तो जल के मूल साधन हैं ही ।

यहाँ मात्र जल की बात नहीं है, अपितु कुएँ के जल की बात है; क्योंकि कुएँ का जल हमारी आवश्यकतानुसार सर्दियों में गर्म और गर्मी में ठंडा रहता है ।

यहाँ यह कहा गया है कि हे भगवन् ! आप कुआं भी हो और बादल भी; रस के कुआं हो और आनन्द वर्षा करने वाले बादल हो ।

इसप्रकार सिद्ध भगवान सूर्य भी हैं और चाँद भी हैं, कुआं भी हैं और बादल भी हैं । तात्पर्य यह है कि इस जगत में लोगों द्वारा मान्य जो-जो उपयोगी और महान वस्तुएँ हैं; वे सभी सिद्धों में समाहित हैं ।

तीसरे छन्द का पूर्वार्द्ध इसप्रकार है ह

(चौपाई)

अकथित महिमा अमित अथाई, निर-उपमेय सरसता नाई ।

हे सिद्ध भगवन् ! आपकी अपरिमित महिमा की न तो थाह पाई जा सकती है और न उसके बारे में कुछ कहा जा सकता है; क्योंकि वह वाणी से अकथित है एवं इतनी गहरी है, गंभीर है कि उसकी गहराई को नापा नहीं जा सकता है और उसकी सीमा भी अपरिमित सारे लोक में प्रसारित है । इसप्रकार हम कह सकते हैं कि आपकी महिमा अमित, अकथित है और अथाह है । उसके समान कोई अन्य न होने से वह महिमा अनुपम है ।

इसके बाद आगामी छन्द इसप्रकार हैं ह

(चौपाई)

भावलिंग बिन कर्म खिपाई, द्रव्यलिंग बिन शिव पद पाई ॥३॥
नय विभाग बिन वस्तु प्रमाणा, दया भाव बिन निज कल्याणा ।
पंगु सुमेरु चूलिका परसै, गुंग गान आरम्भे स्वर सै ॥४॥
यों अजोग कारज नहीं होई, तुम गुण कथन कठिन है सोई ।

जिसप्रकार भावलिंग धारण किए बिना कर्मों का खपाना कठिन है, द्रव्यलिंग के बिना मोक्षपद प्राप्त करना कठिन है, नयविभाग को समझे बिना अथवा नयविभाग का प्रयोग किये बिना वस्तुस्वरूप प्रकाशित करना कठिन है, दयाभाव के बिना अपना आत्मकल्याण करना कठिन है; जिसप्रकार लंगड़े व्यक्ति द्वारा सुमेरु पर्वत की चूलिका का स्पर्श करना कठिन है, गूंगे व्यक्ति का मधुर स्वर से गाना कठिन है ।

जिसप्रकार उक्त अयोग्य कार्यों का होना कठिन है; उसीप्रकार हे सिद्ध भगवन् ! आपका गुणानुवाद करना भी उतना ही कठिन है ।

सिर्फ इतनी बात कहने के लिए कि आपका गुणानुवाद अत्यन्त कठिन है; कवि ने दृष्टान्तों की माला खड़ी कर दी ।

यद्यपि उन्होंने कठिनता की बात की है; तथापि जो बातें कठिनता के संदर्भ में गिनाई हैं; वे कठिन नहीं, एक प्रकार से असंभव ही हैं ।

न केवल वे बातें असंभव हैं, अपितु भगवान के गुणों का गान करना भी एकप्रकार से असंभव ही है ।

सिद्ध भगवान की भक्ति अत्यन्त कठिन है; यह बात कहने के बहाने महाकवि ने यहाँ अनेक महत्त्वपूर्ण विषय प्रस्तुत कर दिये हैं।

छठवें-सातवें आदि गुणस्थानों के योग्य अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण एवं प्रत्याख्यानावरण कषाय के भूमिका के योग्य उपशम, क्षय, क्षयोपशम के अनुसार होनेवाली शुद्धपरिणति और प्रति अंतर्मुहूर्त में होनेवाले शुद्धोपयोगरूप भावलिंग के बिना कर्मों का खपाना कठिन नहीं, असंभव है।

इसीप्रकार नग्न दिगम्बर दशा और छठवें गुणस्थान के योग्य शुभभावरूप द्रव्यलिंग के बिना भी तो मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। यह भी कठिन नहीं, असंभव है।

इसीप्रकार नयविभाग को समझे बिना वस्तुस्वरूप को समझ पाना कठिन नहीं, असंभव है।

दया दो प्रकार की होती है ह १. स्वदया, २. परदया।

अनादिकाल से आजतक हमने अपने आत्मा की सुधि नहीं ली, वह नर्क-निगोद के दुख भोगता रहा, पर हमें उस पर रंचमात्र भी दया नहीं आई। जबकि हम चाहते तो अपने आत्मा की सुधि लेकर, उसे भलीभाँति जानकर, पहिचानकर, उसमें ही अपनापन स्थापित कर, उसका ही ध्यान धर, उसे संसार सागर से पार उतार सकते थे, उतार सकते हैं; यह पूर्णतः हमारे हाथ की बात है; क्योंकि आजतक जितने भी जीवों ने अपना कल्याण किया है, वह पूर्णतः स्वयं ही किया है।

अपने आत्मा को संसार सागर में न डूबने देना ही असली स्वदया है, जो हम कर सकते हैं और हमें हर कीमत पर करना भी चाहिए।

दूसरे परजीवों की दया की बात है, वह व्यवहार दया है। वह भी ज्ञानी धर्मात्माओं के जीवन में होती है और होनी भी चाहिए।

वस्तुतः बात यह है कि कोई किसी का भला-बुरा तो कर नहीं सकता; सब अपने भले-बुरे के कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं ही हैं।

यदि हम पर के संदर्भ में कुछ कर सकते हैं तो मात्र इतना ही कर

सकते हैं, वह भी मात्र निमित्त के रूप में कि हम उसे सन्मार्ग दिखा सकते हैं, आत्मा का सही स्वरूप समझा सकते हैं।

केवली भगवान और गणधर देवादि भी इसीप्रकार का परोपकार करते हैं। अतः हमें इसप्रकार का कार्य अवश्य करना चाहिए।

यद्यपि असली परदया तो यही है; तथापि व्यवहार से हम जो भी सहयोग कर सकते हैं, वह हमें अवश्य ही करना चाहिए।

उक्त प्रतिपादन मुक्तिमार्ग में अत्यन्त आवश्यक है; जिसे आपने भगवान की भक्ति की महिमा दिखलाने के बहाने बड़ी ही सरलता से प्रस्तुत कर दिया है।

आगामी पाँचवाँ आधा छन्द इसप्रकार है ह

(चौपाई)

सर्व जैन-शासन जिनमाहीं, भाग अनन्त धरै तुम नाहीं ॥५॥

हे सिद्ध भगवन् ! सम्पूर्ण जैन शासन में तुम्हारे गुणों का अनन्तवाँ भाग भी नहीं आया है। तात्पर्य यह है कि यदि तुम्हारे गुणों का प्रतिपादन किया जाये तो सम्पूर्ण जैन शासन में तुम्हारे गुणों का अनन्तवाँ भाग भी नहीं आयेगा। तात्पर्य यह है कि तुम्हारे गुणों का गान करना तो एकदम असंभव काम है; जिसे करने की मैंने ठानी है।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि आप ऐसा क्यों करते हैं कि कभी एक लाइन, कभी दो लाइनें, कभी तीन लाइनें और कभी चार लाइनें एक साथ प्रस्तुत करते हो, छन्दों के अनुसार अर्थ क्यों नहीं समझाते?

अरे भाई ! बात यह है कि हम अर्थ के अनुसार लाइनों को रखते हैं। यदि तुम जरा सा प्रयास करो तो सबकुछ स्पष्ट हो जायेगा।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(चौपाई)

गोखुर में नहिं सिंधु समावे, वायस लोक अन्त नहीं पावै।

तातैं केवल भक्तिभाव तुम, पावन करो अपावन उर हम ॥६॥

चिकनी मिट्टीवाले प्रदेश में बरसात के दिनों में जब गाये चलती हैं

तो उनके खुरों से गीली मिट्टी में जो गड़ढे पड़ जाते हैं; उन्हें गोखुर कहते हैं। गोखुर माने गायों के खुरों से बने हुए छोटे-छोटे गड़ढे।

उन गोखुरों के गड़ढों में जिसप्रकार समुद्र नहीं समा सकता और कौआ कितना ही उड़े, पर लोक के अन्त को प्राप्त नहीं कर सकता; उसीप्रकार मेरी तुच्छ बुद्धि में आपके गुण नहीं समा सकते, मेरी तोतली वाणी से आपके गुणों का गान नहीं हो सकता। इसलिए हे सिद्ध भगवन् ! तेरे प्रति जो भक्तिभाव मेरे हृदय में है; उसी के बल पर मुझसे जो कुछ बन पड़ रहा है, कर रहा हूँ। हे भगवन् ! आप तो मेरे इस अपवित्र हृदय को पवित्र कर दो।

इस छन्द में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिबिंबित होता है। गाय के खुरों से बने गड़ढेरूप गोखुर में जिसप्रकार समुद्र का सम्पूर्ण पानी नहीं समा सकता, उसीप्रकार मेरी वाणी में तेरी भक्ति नहीं समा सकती है।

देखो, अपनी बात कहने के लिए कवि का ध्यान कहाँ गया। मैंने स्वयं देखा कि मालवा की चिकनी गीली मिट्टी में बरसात के दिनों में गड़ढे पड़ जाते हैं। वह जमीन जब सूख जाती है तो वे गड़ढे जैसे के तैसे बने रह जाते हैं। जब दुबारा बरसात होती है तो उनमें पानी भर जाता है। आप सोचिये जरा, उन गड़ढों में कितना पानी आता होगा। क्या गोखुर के उस गड़ढे में समुद्र समा सकता है ?

सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(चौपाई)

जे तुम यश निज मुख उच्चारैं, ते तिहूँ लोक सुजस विस्तारैं।

तुम गुणगान मात्र कर प्राणी, पावैं सुगुण महा सुखदानी ॥७॥

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि जो व्यक्ति निज मुख से तुम्हारे यश का उच्चारण करता है; उसका सुयश तीन लोक में फैल जाता है। तुम्हारे मात्र गुणगान करने से जगत के प्राणी महा सुख देनेवाले सुगुणों को प्राप्त कर लेते हैं।

तात्पर्य यह है कि आप इतने महान हो कि जो व्यक्ति आपके नाम का उच्चारण करता है, आपकी महिमा के गीत गाता है; उससे आपका यश जगत में फैलता हो ह ऐसी बात नहीं है; क्योंकि आपका यश तो जगत में पहले से फैला हुआ है; बल्कि आपका यश गानेवाले का यश तीन लोकों में फैल जाता है।

इसीप्रकार जो व्यक्ति आपका गुणगान करता है, उसे महासुख देने वाले गुणों की प्राप्ति हो जाती है।

इसप्रकार आपका गुणगान करनेवाले और यशगान करनेवालों को महासुख देनेवाले गुणों की प्राप्ति हो जाती है और उसका यश तीन लोक में फैल जाता है।

आठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(चौपाई)

जिन चित ध्यान सलिल तुम धारा, ते मुनि तीरथ हैं निरधारा।

तुम गुण हंस तुम्हीं सरवासी, वचन जाल में लेत न फांसी ॥८॥

जिन लोगों ने अपने चित्त में आपके ध्यानरूपी जल को धारण किया है; वे मुनिराज तीर्थ बन गये, जहाँ वे खड़े हो गये, वे स्थान तीर्थ बन गये। ऐसा निर्धारण मुझे हो गया है।

हे सिद्ध भगवन् ! आपके गुणरूपी हंसों को आवास देनेवाले तालाब तुम्हीं हो। तात्पर्य यह है आप एक सुन्दरतम मानसरोवर झील जैसे तालाब हो। उस तालाब में तुम्हारे गुणरूपी हंस रहते हैं, विचरण करते हैं, केलि करते हैं।

मैंने बहुत कोशिश की कि आपके गुणरूपी हंस मेरे वचनरूपी जाल में फंस जावें; परन्तु वे आपके गुणरूपी हंस मेरे वचनों के जाल में फंसते ही नहीं हैं। अतः अब मैं मजबूर हूँ।

तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति आपका ध्यान करते हैं; वे साधु इतने महान बन जाते हैं कि लोग उन्हें तीर्थ के रूप में पूजने लगते हैं। मैंने

आपके गुणों को वाणी देने की बहुत कोशिश की, पर मेरी वाणी आपके गुणों का प्रतिपादन करने में सफल नहीं हुई, असफल ही रही।

इसप्रकार आपकी महिमा अपार है, उसका पार पाना संभव नहीं है।
नौवाँ छन्द इसप्रकार है ह्र

(चौपाई)

जगत बंधु गुणसिंधु दयानिधि, बीजभूत कल्याण सर्वसिधि।
अक्षय शिवस्वरूप श्रिय स्वामी, पूरण निजानन्द विश्रामी ॥१॥

हे जगतबन्धु, हे गुणसिंधु, हे दयानिधि ! आप सभी का कल्याण करनेवाली सिद्धियों के बीज हो, बीजभूत हो। तात्पर्य यह है कि जीवन में प्राप्त होनेवाली सिद्धियों के एकमात्र आधार आप ही हो।

हे भगवन् ! आप अक्षय हो, अतः कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होवोगे; आप कल्याणस्वरूप हो, मोक्षलक्ष्मी के स्वामी हो। हे निजानन्द में विश्राम करनेवाले भगवन् ! आप अपने आप में परिपूर्ण हो।

हे भगवन् ! लोक में रहनेवाले जितने भी प्राणी हैं, आप उनके हितकारी बन्धु हो, उन पर दया करनेवाले हो, दया के खजाने हो और अनन्तगुणों के सागर हो। जगत की कल्याणकारी जितनी भी सिद्धियाँ हैं, आप उनके बीज हैं, उनकी प्राप्ति आपकी भक्ति से ही होती है। स्वयं के आनन्द में विश्राम करनेवाले हे भगवन् ! आप कभी नष्ट नहीं होनेवाले कल्याणस्वरूप हो।

दसवाँ छन्द इसप्रकार है ह्र

(चौपाई)

शरणागत सर्वस्व सुहितकर, जन्ममरण दुख आधि-व्याधि हर।
'संत' भक्ति तुम हो अनुरागी, निश्चै अजर अमर पद भागी ॥१०॥

हे सिद्ध भगवन् ! आपकी शरण में जो भी आता है या आया है; उसका सर्वस्व हितरूप ही हो गया है; अतः आप सुहितकर हो।

जन्म-मरण आदि दुःखों और सभी प्रकार की आधियों-व्याधियों

को हरनेवाले हो। मानसिक बीमारियों को आधि कहते हैं और शारीरिक बीमारियों को व्याधि कहते हैं।

सन्त कवि कहते हैं कि मैं तो आपकी भक्ति का अनुरागी हूँ; इसलिए निश्चितरूप से अजर-अमरपद का भागी हूँ।

तात्पर्य यह है कि मुझे आप जैसे आधि-व्याधि से रहित अजर-अमर पद की प्राप्ति अवश्य होगी; आपकी भक्ति का ऐसा ही प्रताप है।

इसके बाद एक घत्तानन्द छन्द दिया गया है; जो इसप्रकार है ह्र

(घत्तानन्द)

जय जय सुखसागर, सुजस उजागर, गुणगण आगर, तारण हो।
जय संत उधारण, विपत्ति विडारण, सुख विस्तारण, कारण हो ॥
तुम गुणगान परम फलदान, सो मंत्र प्रमान विधान करूँ।
जहरी कर्मनि वैरी की कहरी, असहैरी भव की व्याधि हरूँ ॥११॥

हे सुख के सागर सिद्ध भगवान ! आपकी जय हो, जय हो। आपका यश तो सम्पूर्ण जगत में उजागर हो रहा है। गुणों के समुदाय के तुम आगर हो, आगार हो एवं सम्पूर्ण जग के तारणहार हो।

हे सन्तों का उद्धार करनेवाले सिद्ध भगवान ! आप सभी प्रकार की विपत्तियों को विदारण करनेवाले हो और सुख का विस्तार करनेवाले हो तथा सुख के कारण हो।

हे सिद्ध भगवन् ! आपके गुणों का गान करना उत्कृष्ट फल देनेवाला है। मैं आपके गुणगान का विस्तार मंत्र के अनुसार करता हूँ। उसके फल में कर्मशत्रुओं की जहरीली, बरदाशत के बाहर की यह कष्ट देनेवाली संसार की जो व्याधि है, उसका हरण करता हूँ।

उक्त छन्द में सिद्ध भगवान को सुख का सागर, अनन्त गुणों का आगर या आगार, संतों के उद्धारक, विपत्तियों के नाशक और सुख का विस्तार करनेवाले कहा गया है। ●

पाँचवीं पूजन की जयमाला

सिद्ध भगवान को जो आनन्द निरन्तर प्रतिसमय प्राप्त है; उस आनन्द की महिमा की महिमा प्रदर्शित करते हुए कविवर संतलालजी इसी पाँचवीं पूजन के अन्तिम अर्घ्य संबंधी छन्द में जो कुछ कहते हैं; वह अपने आप में अद्भुत है।

प्रस्तुत कृति में प्रत्येक जयमाला के अर्थ एवं भाव पर हम विचार कर रहे हैं। उक्त छन्द भी पाँचवीं पूजन की जयमाला के एकदम ऊपर है। तात्पर्य यह है कि बस इस छन्द के बाद ही जयमाला आरंभ होती है।

उक्त छन्द मूलतः इसप्रकार है ह

(सवैया इकतीसा)

जेते कछु पुद्गल परमाणु शब्दरूप,
भये हैं, अतीत काल आगे होनहार हैं।
तिनको अनंत गुण करत अनंतबार।
ऐसे महाराशि रूप धरें विसतार हैं।।
सब ही एकत्र होय सिद्ध परमात्म के,
मानो गुण गण उचरन अर्थधार हैं।
तौं भी इक समय के अनंत भाग अनंद को,
कहत न कहैं हम कौन परकार हैं ॥१३०॥

इस जगत में जितने भी पुद्गल परमाणु शब्दरूप परिणामित हो रहे हैं, अतीतकाल में हो गये हैं और भविष्य में होनेवाले हैं; उन सभी को मिलाकर जो जोड़रूप राशि आवे; उस राशि का अनंत में अनंतबार गुणा करने पर जो महाविस्तारवाली महाराशि आवेगी; वह महाराशिरूप शब्दावली पूरी तरह एकत्रित होकर सिद्ध परमात्मा के गुणों का अर्थ सहित उच्चारण करें; तब भी सिद्ध भगवान के एक समय के आनन्द के अनंतवें भाग का भी कथन नहीं कर सकती।

अब आप ही बताइये कि हम उनके गुणों का वर्णन कैसे कर सकते हैं ? तात्पर्य यह है कि उनके एक समय के आनन्द का वर्णन भी जब कोई नहीं कर सकता तो फिर हम उनके गुणों का वर्णन किसप्रकार कर सकते हैं ? उनके गुणों का वर्णन करना हमारे वश की बात नहीं है।

सिद्ध भगवान के गुणों की महिमा बतानेवाले इस छन्द में जो बात कही गई है; वह अतिशयोक्ति नहीं है, अपितु एक वास्तविक सत्य है।

इस पंचम पूजन की जयमाला के आरंभ में भी एक दोहा दिया गया है; जो इसप्रकार है ह

(दोहा)

शिवगुण सरधा धार उर, भक्ति भाव है सार।

केवल निज आनन्द करि, करूँ सुजस उच्चार ॥१॥

मुक्ति को प्राप्त सिद्ध भगवान के गुणों की श्रद्धा हृदय में धारण करके, मैं उनकी भक्ति करता हूँ; क्योंकि भक्ति के भाव ही सारभूत हैं।

संत कवि कहते हैं कि मैं केवल अपने आनन्द के लिए ही सिद्ध भगवान के सुयश का उच्चारण कर रहा हूँ।

तात्पर्य यह है कि इसमें मेरी कोई लौकिक कामना नहीं है। दूसरी बात यह है कि मेरे इस प्रयास से सिद्ध भगवान की महिमा कुछ बढ़ जायेगी हूँ ऐसा भी कुछ नहीं है। वे तो स्वयं इतने महान हैं कि उन्हें अपनी महिमा बढ़ाने के लिए किसी की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें ऐसा कोई भाव भी नहीं है; क्योंकि वे तो पूर्ण वीतरागी हो गये हैं।

शेष पूरी जयमाला पद्धरि छन्द में है।

दूसरा छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय मदन कदन मन करण नाश, जय शांतिरूप निज सुख विलास।

जय कपट सुभट पट करन सूर, जय लोभ क्षोभ मद दम्भ चूर ॥२॥

हे सिद्ध भगवान ! आपने कामदेव अर्थात् काम विकार का नाश

कर दिया है तथा मन और करण माने इन्द्रियों का भी नाश कर दिया है। हे भगवान् ! आप शान्तिस्वरूप निजसुख में विलास कर रहे हैं।

नाश कर दिया का अर्थ यह नहीं है कि इन्द्रियों में कुछ तोड़-फोड़ कर दी है। मात्र यह अर्थ है कि उन्हें जीत लिया है। अब उन्हें अपने ज्ञान और आनन्द में इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियाँ या इन्द्रियज्ञान या इन्द्रिय आनन्द की भी उन्हें आवश्यकता नहीं है। वे तो एकदम अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर उपयोग कर रहे हैं। इन्द्रियों और मन को काम में नहीं लेना, उनका उपयोग नहीं करना ही उन्हें जीतना है। सिद्ध भगवान् को जब अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त है तो फिर उन्हें इन्द्रियों की क्या आवश्यकता है? यही इन्द्रियों को जीतना है।

हे भगवन् ! आप कपटरूपी सुभट को पट माने चित्त करने में शूरवीर हैं और आप लोभ, क्षोभ (राग-द्वेष) और मद (मान) के दम्भ को चूर करनेवाले हो।

तात्पर्य यह है कि क्रोध, मान, माया और लोभ हूँ ये कषायें आपके हैं ही नहीं। आप तो इन सबसे पार हो गये हो।

इस छन्द में अन्त्यानुप्रास की छटा देखने योग्य है। कपट सुभट पट और मदन कदन मन करण हूँ इन पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास के साथ-साथ सभी अक्षर ह्रस्व हैं, एक भी अक्षर दीर्घ नहीं है।

तीसरा छन्द इसप्रकार है हूँ

(पद्धरि छन्द)

पर-परिणतिसों अत्यन्त भिन्न, निज परिणतिसों अति ही अभिन्न।
अत्यन्त विमल सब ही विशेष, मल लेश शोध राखो न शेष ॥३॥

हे भगवन् ! आप परपरिणति से अत्यन्त भिन्न और निज परिणति से अत्यन्त अभिन्न हो। आपकी सभी पर्यायें अत्यन्त विमल हो गई हैं; क्योंकि आपने सम्पूर्ण मल का शोध कर डाला है, रंचमात्र भी मल या मैल शेष नहीं रखा है।

वैसे तो प्रत्येक आत्मा स्वभाव से ही परपरिणति से पूर्णतः भिन्न और अपनी परिणति से पूरी तरह अभिन्न ही होता है।

हे भगवान् ! आप तो स्वभाव के साथ-साथ पर्याय से भी पूर्णतः पवित्र हैं, मिथ्यात्व और कषाय भावों से रहित हो गये हैं; अपनी अत्यन्त निर्मल परिणति में ही पूर्णतः मगन हैं।

चौथा छन्द इसप्रकार है हूँ

(पद्धरि छन्द)

मणि दीप सार निर्विघ्न ज्योत, स्वाभाविक नित्य उद्योत होत।
त्रैलोक्य शिखर राजत अखण्ड, सम्पूर्ण द्युति प्रगटी प्रचण्ड ॥४॥

हे सिद्ध भगवान् ! आप मणि के दीपक हो, इसकारण आपकी ज्योति भी सभी प्रकार से निर्विघ्न है और स्वाभाविकरूप से नित्य निरन्तर प्रकाशित होती रहती है। आप तीन लोक के शिखररूप सिद्धशिला पर अखण्डरूप से विराजमान होकर सुशोभित हो रहे हैं।

उस अखण्ड ज्योति की द्युति सम्पूर्णतः स्वाभाविकरूप से नित्य प्रकाशित होती रहती है और वह ज्योति सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करती रहती है।

जगत में जो दीपक होता है, उसमें तेल-बाती आदि डालने पड़ते हैं और वह बहुत थोड़ी जगह को ही प्रकाशित करता है। पर यह ज्योति मणिज्योति है; अतः निरन्तर निर्विघ्न प्रकाशित होती है।

इसीप्रकार की चर्चा भक्तामर स्तोत्र के एक छन्द में प्राप्त होती है; जो इसप्रकार है हूँ

(वसंततिलका)

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।

गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां

दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

हे भगवन् ! हे नाथ !! इस जगत को प्रकाशित करनेवाले आप एक अपर जाति के अद्भुत दीपक हो।

जगत के दीपकों को तेल और बाती की जरूरत होती है, उनमें से प्रकाश के साथ-साथ धुआं भी निकलता है और जरा सा हवा का झौंका लगने पर वह बुझ जाता है; किन्तु आप निर्धूम हो, धुएं से रहित हो, बाती की आवश्यकता आपको नहीं है; इसलिए आप बाती से भी रहित हो, आप रूपी दीपक में तेल भी नहीं डालना पड़ता और आप एक साथ सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित कर देते हो।

ऐसी आँधी चले कि अचल पर्वत भी चलायमान हो जाय; वह आँधी-तूफान भी आपको बुझा नहीं सकता। इसप्रकार हे भगवन् ! आप कोई अपर जाति के अद्भुत दीपक हो। जिसप्रकार का भाव भक्तामर के इस छन्द में व्यक्त किया गया है; उसीप्रकार का भाव जयमाला के उक्त छन्द में रखने की सफल कोशिश की गई है।

यह तो आप जानते ही हो कि दीपक को जितनी ऊँची और अबाधित जगह पर रखेंगे, वह उतने ही अधिक स्थान को प्रकाशित करता है। आप तीन लोक के सबसे ऊपर सिद्धशिलारूपी शिखर पर विराजमान हो; इसलिए आपका प्रकाश तीन लोक में फैल रहा है।

इसलिए इस छन्द में कहा गया है कि ह

त्रैलोक्य शिखर राजत अखण्ड, सम्पूर्ण द्युति प्रगटी प्रचण्ड ॥

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

मुनि-मन-मंदिर को अन्धकार, तिस ही प्रकाशसौं नशत सार ।

सो सुलभ रूप पावै न अर्थ, जिस कारण भव-भव भ्रमे व्यर्थ ॥५॥

मुनियों के मनरूपी मंदिर में विद्यमान अंधकार का नाश हे सिद्ध भगवान ! आपके ज्ञानरूपी मणिदीप के प्रकाश से ही नष्ट होता है।

जगत के दीपक तो बाहर के अंधकार का पूरी तरह नाश नहीं कर सकते; पर सूर्य का प्रकाश तलघर के अन्धकार का भी नाश कर देता है, किन्तु वह सूर्य भी किसी के मन के अंधकार का नाश नहीं कर सकता।

हे भगवान् ! आपने तो वीतरागी मुनिराजों के मन में विद्यमान अंधकार का भी नाश कर दिया है।

उक्त छन्द की दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि उसके बिना वस्तुस्वरूप को सुलभता से प्राप्त करना संभव नहीं है; इसीलिए इस जीव का भव-भव में व्यर्थ ही घूमना होता है।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जो कल्प-काल में होत सिद्ध, तुम छिन ध्यावत लहिये प्रसिद्ध ।

भवि पतितन को उद्धार हेत, हस्तावलम्ब तुम नाम देत ॥६॥

हे सिद्ध भगवान ! जो जीव कल्पकाल में सिद्ध होते हैं; यदि वे आपका ध्यान क्षण भर भी करें तो वह सिद्धि उन्हें क्षण भर में प्राप्त हो जाती है। गिरे हुए भव्य जीवों के उद्धार के लिए आपका नाम हाथ का सहारा देता है, हस्तावलम्ब है।

बात तो यही परम सत्य है कि जब, जिसको, जिस निमित्तपूर्वक, जिस विधि से मुक्ति की प्राप्ति होनी है; तभी, उसी को, उसी निमित्त पूर्वक, उसी विधि से मुक्ति की प्राप्ति होगी; पर यहाँ सिद्ध भगवान की विशेष महिमा बताने के लिए यह कह दिया है कि आपका ध्यान करने से क्षणभर में मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। यह मात्र उपचरित कथन है। इससे अधिक कुछ नहीं।

यदि कोई अपने आत्मा को न जाने, उसमें अपनापन न करे, उसका ध्यान नहीं करे और यह मान ले कि मैं तो सिद्धों की भक्ति से मुक्ति प्राप्त कर लूँगा तो वह सफल नहीं होगा।

प्रत्येक द्रव्य की अनादिकाल से अनंतकाल तक की प्रत्येक पर्याय का काल अनादि से ही सहज भाव से स्वतः सुनिश्चित है। उसे किसी ने सुनिश्चित नहीं किया है, वह तो सहजभाव से ही सुनिश्चित है। जिसप्रकार प्रत्येक द्रव्य का, प्रत्येक जीव का द्रव्यस्वभाव सुनिश्चित है; उसीप्रकार उसका पर्यायस्वभाव भी निश्चित है।

तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार प्रत्येक जीव का त्रिकाली स्वभाव ज्ञानानन्दस्वभावी है; उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है; उसीप्रकार प्रत्येक जीव का या प्रत्येक द्रव्य का पर्याय स्वभाव भी सुनिश्चित है, उसमें भी किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है।

तात्पर्य यह है कि जिस समय, जिसका जो होना निश्चित है; उसका उस समय, वही होगा; ह्व यह सुनिश्चित है और जिसप्रकार द्रव्यस्वभाव में परिवर्तन संभव नहीं, उसीप्रकार पर्यायस्वभाव का अर्थात् जिस समय जो होना है, उसमें भी कोई फेरफार संभव नहीं है।

वस्तुस्वरूप ऐसा होने पर भी व्यवहारनय से ऐसा कहने की परम्परा जिनागम में भी रही है कि हे भगवान ! आप सबका सबकुछ कर सकते हैं; ह्व यह कथन पूर्णतः उपचरित कथन है; क्योंकि भगवान की दिव्यध्वनि में ही इस सत्य का उद्घाटन हुआ है कि इन्द्र और जिनेन्द्र भी इस जगत में स्वतः होनेवाले परिवर्तनों में कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकते। इन्द्र और जिनेन्द्र भी किसी का कुछ नहीं कर सकते ह्व यह एकदम पूर्णतः सत्य कथन है। इसके अतिरिक्त और सब मात्र उपचरित कथन हैं।

इस बात का मर्म समझने के लिए जिनागम में कथित निश्चय-व्यवहारनयों का स्वरूप समझना चाहिए। इस विषय में जिसे विशेष जिज्ञासा हो तो उसे लेखक की अन्य कृति 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' के निश्चय-व्यवहार संबंधी प्रकरण का अध्ययन करना चाहिए।

सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

तुम गुण सुमिरण सागर अथाह, गणधर सरीख नहीं पार पाह।
जो भवदधि पार अभव्य रास, पावे न वृथा उद्यम प्रयास ॥७॥

तुम्हारे गुणों का स्मरण अथाह सागर के समान है। उसकी गहराई नापने में गणधर सरीखे लोग भी पार नहीं पा सकते हैं।

जिसप्रकार अभव्य जीवों की राशि संसार सागर को पार करने का

प्रयास करे तो उसका प्रयास/उद्यम व्यर्थ ही जानेवाला है; उसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं होती; उसीप्रकार हे भगवन् ! तुम्हारे गुणों के स्मरणरूप अथाह सागर में गणधर सरीखे भी पार नहीं पा सकते।

यह बात कोई अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि सिद्ध भगवान में गुण तो अनन्त हैं और गणधरदेव की भी आखिर वाणी तो मर्यादित ही होती है। अतः यह कहना ठीक ही है कि आपके गुणानुवाद में गणधरदेव भी पार नहीं पा सकते।

आठवें और नौवें छन्द इसप्रकार हैं ह्व

(पद्धरि छन्द)

जिन-मुख द्रहसों निकसी अभंग, अति वेग रूप सिद्धान्त गंग।
नय-सप्त भंग कल्लोल मान, तिहुँ लोक वही धारा प्रमान ॥८॥
सो द्वादशांग वाणी विशाल, ता सुनत पढ़त आनन्द रसाल।
यातें जग में तीरथ सुधाम, कहिलायो है सत्यार्थ नाम ॥९॥

हे जिनेन्द्र भगवान ! आपके मुखरूपी सरोवर से अत्यन्त वेगवाली अभंग सिद्धान्तरूपी गंगा नदी निकली है। उसमें सात नयोरूपी कल्लोलें-तरंगें उठ रही हैं और वह सिद्धान्तरूपी गंगा तीन लोक में प्रवाहित हो रही है।

वह और कुछ नहीं आपके मुख से खिरी द्वादशांग वाणी ही है। उसके सुनने-पढ़ने से अतीन्द्रिय रस भरा आनन्द आता है।

इसी वजह से जगत में गंगा नदी को तीर्थ माना जाता है, सुधाम माना जाता है। यही इसके नाम की सत्यार्थता है।

दिव्यध्वनिरूप जिनवाणी की उपमा गंगा नदी से दी जाती रही है। उसी परम्परा का निर्वाह सहजभाव से यहाँ हो रहा है।

अन्तर मात्र इतना ही है कि अन्यत्र जिनवाणी माँ को गंगा की उपमा दी गई है और यहाँ वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को गंगा कहा जा रहा है।

यदि गंभीरता से विचार करें तो कोई विशेष अन्तर नहीं है; क्योंकि बात मात्र इतनी ही तो है कि यहाँ सिद्धान्त की बात है और वहाँ उनकी वाणी में प्रतिपादित सिद्धान्तों की बात है।

कविवर पण्डित भागचंदजी द्वारा लिखित महावीराष्टक स्तोत्र में भी इसप्रकार का एक छन्द आता है; जिसमें भगवान महावीर की वाणी रूपी गंगा की चर्चा की है। जो मूलतः इसप्रकार है ह

(शिखरिणी)

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला,
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

हे महावीर भगवन् ! अनेक प्रकार के नयोरूपी कल्लोलों से अत्यन्त निर्मल; आपकी वाणीरूपी गंगा; ज्ञान के विशाल सागर में जगत की जनता को स्नान कराती है; वह जिनवाणीरूपी गंगा आज भी, अभी भी बुधजनरूपी हंसों द्वारा भलीभाँति परिचित है। हे भगवान महावीर! आप मेरे नयनों के रास्ते से हृदय में विराजमान हो जावें; मेरे नयनपथगामी होवें।

उक्त छन्द में कविवर भागचंदजी यह कहना चाहते हैं कि हे भगवान महावीर ! आपकी दिव्यध्वनिरूपी गंगा नदी अत्यन्त निर्मल है; क्योंकि उसमें निरन्तर अनेक प्रकार के नयों की तरंगे उठती रहती हैं।

जिसप्रकार लौकिक नदी को उसमें उठनेवाली तरंगे निर्मल रखती हैं; वे तरंगे मैल को या तो नीचे बैठा देती हैं या फिर किनारे पर फेंक देती हैं। वजनदार मैल को नीचे बैठा देती हैं और हलके मैल को किनारे पर फेंक देती हैं; उसीप्रकार जिनवाणी में उठनेवाली नयों की तरंगें जिनवाणी को निर्मल रखती हैं।

वह गंगा नदी समुद्र में गिरती है और जिनवाणी गंगा ज्ञानसागर में मिल जाती है और उसमें जगत की जनता नहाती है और अपने मैल को धोकर निर्मल हो जाती है।

यद्यपि आपकी दिव्यध्वनि २५सौ वर्ष पहले खिरी थी, पर आज भी बुद्धिमान ज्ञानी धर्मात्मा लोग उससे भलीभाँति परिचित हैं।

जिनवाणी के माध्यम से हे भगवान महावीर ! आप हमारी आँखों के सामने रहें; हमारे नयनपथगामी रहें, हमारी दृष्टि से ओझल कभी न हों ह यह हमारी प्रार्थना है।

जो बात महावीराष्टक स्तोत्र के इस छन्द में कही गई है; वही बात जयमाला के छन्दों में कही गई है।

दसवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

सो तुम ही सों है शोभनीक, नातर जल सम जु वहै सु ठीक।
निज पर आतमहित आत्मभूत, जबसे है जब उतपत्ति सूत ॥१०॥

हे सिद्ध भगवन् ! यह गंगा नदी या जिनवाणी रूप सिद्धान्त गंगा एकमात्र आपसे ही सुशोभित हो रही है; अन्यथा तो क्या है मात्र पानी बह रहा है। हे भगवन् ! जब से जगत की उत्पत्ति हुई है, तभी से इस जिनवाणी गंगा का काम अपना और पर का आत्महित करना ही है; वही एक आत्महितकारी मार्ग है।

उक्त छन्द में जो नातर शब्द का प्रयोग पाया जाता है; वह बुन्देलखण्डी भाषा का बहु प्रचलित शब्द है; जो ग्रामीण बुन्देलखण्डी में प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का अर्थ है ह अन्यथा।

गंगा का भाव है जिनवाणी में समागत सिद्धान्त। गंगा का यदि यह अर्थ नहीं किया जाय तो फिर अन्य नदियों के समान गंगा भी बहते हुए पानी के अतिरिक्त और क्या है ? कुछ नहीं।

ग्यारहवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

ज्यों महाशीत ही हिम प्रवाह, है मेटन समरथ अगनि दाह।
त्यों आप महा मंगलस्वरूप, पर विघन विनाशन सहज रूप ॥११॥

हे भगवन् ! जिसप्रकार अग्नि के भयंकर दाह को मिटाने में महाशीत

में होनेवाला हिम का प्रवाह ही समर्थ हो सकता है; उसीप्रकार इस जगत के विघ्नों को सहज भाव से मिटाने में एक आप ही समर्थ हो, महामंगल स्वरूप हो।

जिसप्रकार अत्यन्त ठंडा बर्फीला पानी सहज भाव से अग्नि दाह मिटाता है; उसीप्रकार आप सांसारिक दुख-दाह मिटाने में सहजरूप से मंगलस्वरूप हैं, विघ्नविनाशक हैं। यद्यपि आप कर्तृत्वबुद्धि पूर्वक कुछ भी नहीं करते; तथापि सहजभाव से आपका सत्समागम लोगों के लिए विघ्नविनाशक और मंगलस्वरूप है।

उस जिनवाणीरूपी गंगा के कारण ही यह गंगा नदी तीर्थ कही जा रही है, नातर अर्थात् अन्यथा उसमें पानी के अलावा और क्या है ? अन्य नदियों के समान उसमें भी पानी बहता रहता है। गंगा के किनारे संतगण निरंतर ज्ञान की आराधना करते रहते हैं; इसीकारण वह तीर्थ है।

बारहवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

है 'सन्त' दीन तुम भक्ति लीन, सो निश्चय पावै पद प्रवीण।

तातैं मन-वच-तन भाव धार, तुम सिद्धनकूं मम नमस्कार ॥१२॥

सन्त कवि कहते हैं कि यह दीन संत तो आपकी भक्ति में लीन है अथवा जो व्यक्ति तुम्हारी भक्ति में लीन होगा, वह निश्चितरूप से प्रवीण पद-मुक्ति पद को प्राप्त करेगा। इसलिए मैं तो मन-वचन-काय से सम्यक् भाव धारण करके हे सिद्ध भगवन् ! आपको नमस्कार करता हूँ।

आखिर अन्त में सन्त कवि कहते हैं कि यद्यपि आप कुछ भी नहीं करते; तथापि जो सज्जन पुरुष सहजभाव से आपकी भक्ति में लीन रहता है; वह अपने आप अर्थात् स्वयं ही सहजभाव से प्रवीण पद प्राप्त करता है, निश्चय से मुक्ति प्राप्त करता है।

बस इसलिए ही हम कुछ भी माँग न करके; मन, वचन और काय से भक्तिभाव धारण करके सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते हैं।

अन्त का तेरहवाँ छन्द दोहे के रूप में है, जो इसप्रकार है ह

(दोहा)

जो तुम ध्यावें भावसों, ते पावें निज भाव।

अग्नि पाक संयोग करि, शुद्ध सुवर्ण उपाव ॥१३॥

जिसप्रकार अग्नि पाक के संयोग में सोना शुद्धता को प्राप्त कर लेता है; उसीप्रकार हे भगवन् ! जो व्यक्ति आपका ध्यान भावपूर्वक करते हैं; वे निज भाव को प्राप्त कर लेते हैं।

अन्त में निष्कर्ष के रूप में भी वे इस दोहे के माध्यम से यही कहते हैं कि जिसप्रकार सहजभाव से जब अग्नि पाक का संयोग होता है तो सोना शुद्ध हो जाता है; उसीप्रकार जब आपका ध्यान भक्तिभाव से होता है तो निजभाव की प्राप्ति हो जाती है।

अन्त में मूल बात यह है कि आपके ध्यान से निजभाव की प्राप्ति होती है, अन्य परिग्रहादिरूप पाप सामग्री की नहीं।

यह सारा जगत तो भगवान की भक्ति और ध्यान पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा और लौकिक अनुकूलता प्राप्त करने की भावना से ही करता है। परन्तु हे सिद्ध भगवन् ! यह रुपया-पैसा, मकान-जायदाद आदि भोग सामग्री तो परिग्रह नामक पाप है और इन्हें कमाने व जोड़ने एवं भोगने का भाव पापभाव है।

ये पाप और पापभाव सुखरूप और सुखदायक कैसे हो सकते हैं? ह यह विचार कोई नहीं करता।

आपका सच्चा भक्त या अनुयायी, पुजारी तो वही है; जो इस बात पर गंभीरता से विचार करें और आपके बताये निज भगवान आत्मा को जाने, माने और उसी में जम जाय, रम जाय। ●

छठवीं पूजन की जयमाला

इस छठवीं पूजन के अष्टक छन्दों की अचरी में एक बात कही गई है कि यह उभय द्रव्य संयोग त्रिभुवन पूज्य पूज रचावहिं ह्व इन दोनों द्रव्यों के संयोग से मैं तीन लोक में जो पूज्य हैं, उनकी पूजन करता हूँ।

उक्त पंक्ति में समागत उभय द्रव्य का क्या आशय है ? यह बात हमें प्रत्येक अष्टक पर घटित करके देखना चाहिए।

यह तो आप जानते हैं कि पूजन-पाठादि में जो पंक्तियाँ बार-बार आती हैं, उन्हें अचरी कहते हैं। उक्त पंक्ति भी अचरी की पंक्ति है; अतः उसका अर्थ प्रत्येक अष्टक पर घटाना अनिवार्य है।

एक जल के छन्द पर हम घटा के बताते हैं। वह छन्द मूलतः इसप्रकार है ह्व

(गीता)

अति नम्रता तिहुँ योग में निज भक्ति निर्मल भावहीं।

यह गुप्त जल प्रत्यक्ष निर्मल सलिल तीरथ लावहीं ॥

यह उभय द्रव्य संयोग त्रिभुवन पूज्य पूज रचावहीं।

द्वै अर्द्धशत षट अधिक नाम उचार विरद सु गावहीं ॥१॥

मन-वचन-कायरूप तीन योगों में अति नम्रता और अपनी भक्तिरूप निर्मल भाव ह्व यह गुप्त जल तो भावजल है और दूसरा गंगा जैसे तीर्थस्थान से लाया गया प्रत्यक्ष निर्मल जल द्रव्यजल है ह्व इसप्रकार द्रव्य और भाव ह्व इन दोनों प्रकार के जल के संयोग से मैं तीन लोक के द्वारा पूजित सिद्ध भगवान की पूजा रचता हूँ, करता हूँ। इसप्रकार उनके २५६ नामों का उच्चारण करके उनके विरद का गान करता हूँ।

यह छठवें दिन की पूजा है; जिसमें २५६ अर्घ्य चढ़ाये जाते हैं; इसलिए यहाँ कहा गया है कि द्वै अर्द्धशत षट अधिक अर्थात् २५६ नामों का उच्चारण करके सिद्ध भगवान के विरद गा रहा हूँ।

उक्त २५६ अर्घ्यों में ८ कर्म और उनकी १४८ कर्म प्रकृतियों के नाश करनेवाले सिद्ध भगवान को अर्घ्य चढ़ाये गये हैं।

इनमें तीर्थकर प्रकृति (नाम कर्म) के नाश करनेवाले सिद्ध भगवान को भी अर्घ्य चढ़ाया गया है। तत्संबंधी छन्द मूलतः इसप्रकार है ह्व

(अडिल्ल)

पंचकल्याणक चौतिस अतिशय राजही।

प्रातिहार्य अठ समोसरण द्युति छाजही ॥

तीर्थकर विधि विभव नाश निजपद लहो।

ध्यावत हैं जगनाथ तुम्हें हम अघ दहो ॥१४६॥

पंचकल्याणकों एवं चौतीस अतिशयों से सुशोभित, आठ प्रातिहार्य और समवशरण की द्युति छा रही है, जिसके कारण ह्व ऐसे तीर्थकर प्रकृति नामकर्म और उसके उदय में प्राप्त सम्पूर्ण वैभव का नाश करके आपने अपना सिद्धपद प्राप्त किया है। इसलिए हे जगत के नाथ सिद्ध भगवन् ! आपका ध्यान करने से हम सम्पूर्ण पुण्य-पाप को दहन करते हैं।

ध्यान रहे, इस अर्घ्य में तीर्थकर प्रकृति नामकर्म के बाँधनेवाले को नहीं; अपितु तीर्थकर नामकर्म के विनाश करनेवालों को अर्घ्य चढ़ाया गया है।

जो तीर्थकर नामकर्म; पंचकल्याणक, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, समवशरण एवं सारे जगत का हित करनेवाली दिव्यध्वनि का कारण है; उस तीर्थकर प्रकृति का नाश सिद्ध भगवान ने किया है। यदि वे इसका नाश नहीं करते तो उन्हें सिद्धपद की प्राप्ति नहीं होती।

तात्पर्य यह है कि मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए तीर्थकर प्रकृति का भी नाश करना पड़ता है। अतः तीर्थकर प्रकृति के प्रति आसक्ति रखना भी अच्छी बात नहीं है, धर्म नहीं है। यदि यह धर्म होता तो मुक्ति की प्राप्ति के लिए इसका नाश क्यों करना पड़ता ? इसके प्रति आसक्ति भी कर्म के प्रति आसक्ति है, धर्म के प्रति वात्सल्यभाव नहीं।

इस पूजन के अर्घ्यों में अकेले पापकर्म के नाशक सिद्ध भगवान

को नहीं; अपितु पुण्य और पाप हूँ दोनों प्रकार के कर्मों का नाश करने वाले सिद्ध भगवान को अर्घ्य चढ़ाये गये हैं।

यदि ऐसा नहीं होता तो तीर्थकर प्रकृति का नाश करनेवाले सिद्धों को अर्घ्य क्यों चढ़ाया जाता ? तीर्थकर प्रकृति तो सबसे बड़ा पुण्य है।

अकेली तीर्थकर प्रकृति नामक पुण्य कर्म के नाश करनेवाले सिद्ध भगवान को ही नहीं; अपितु पुण्यकर्म की एक-एक कर प्रत्येक प्रकृति को नाश करनेवाले सिद्ध भगवान को अर्घ्य चढ़ाया है। इसप्रकार कुल मिलाकर ६८ पुण्य प्रकृतियों का नाश करनेवाले सिद्ध भगवान को अर्घ्य चढ़ाये गये हैं।

आजकल अधिकांश लोग अघ का अर्थ अकेला पापकर्म समझते हैं; जबकि पुण्य-पाप दोनों ही अघ हैं।

जिसप्रकार क माने पृथ्वी, ख माने आकाश, ग माने वाणी या जिनवाणी-दिव्यध्वनि होता है; उसीप्रकार घ का अर्थ आत्मा होता है।

इसप्रकार आत्मा के आश्रय से, आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मध्यान से जो वीतराग भाव होता है, वह धर्म है और उससे रहित शुभाशुभ रागभाव पुण्य-पाप कर्म हैं।

पुण्य और पाप हूँ दोनों कर्म हैं; वे निश्चय से धर्म नहीं हो सकते। उन्हें जहाँ-जहाँ धर्म कहा गया हो, लिखा गया हो; उक्त कथन को व्यवहारनय से किया गया उपचरित कथन ही जानना चाहिए।

अब इस छठवीं पूजा की जयमाला आरंभ करते हैं। जयमाला के आरंभ में दो दोहे हैं; जो इसप्रकार हैं हूँ

(दोहा)

थावर शब्द विषय धरै, त्रस थावर पर्याय।
यो न होय तो तुम सुगुण, हम किह विधि वर्णाय ॥१॥
तिस पर जो कछु कहत हैं, केवल भक्ति प्रमान।
बालक जल शशि-बिंब को, चहत ग्रहण निज पान ॥२॥

ये स्थूल शब्द त्रस और स्थावर पर्याय को ही विषय बनाते हैं। हे

38

भगवन् ! आप तो त्रस-स्थावर पर्याय से पार हो गये हैं। अतः ये शब्द आपको विषय नहीं बना सकते। ऐसी स्थिति में हम आपके गुणों का वर्णन कैसे कर सकते हैं ? इसलिए आपकी अरहंतादि पूर्व पर्यायों को लक्ष करके आपकी स्तुति करते हैं। ऐसी स्थिति में केवल भक्ति की मर्यादा में जो कुछ बन पड़ता है, करते हैं। सो ठीक ही है; क्योंकि बालक ही जल में पड़े चन्द्रमा के प्रतिबिंब को ग्रहण करना चाहता है।

बालक जब माँ से चन्दा मामा की माँग करता है तो परेशान होकर माँ एक थाली में पानी भरकर रख देती है। उसमें पड़े चन्द्रमा के प्रतिबिंब को देखकर, उसे असली चन्द्रमा समझकर बालक उस पर झपट पड़ता है। पानी हिलने से जब चन्द्रमा गायब हो जाता है तो बालक रोने लगता है और फिर चन्द्रमा की माँग करने लगता है।

बालक की अबोधता संबंधी उक्त घटना की उपमा का उदाहरण देकर कवि कह रहा है कि हम भी उस बालक के समान ही हैं; आपकी भक्ति का प्रयास कर रहे हैं। हमारा यह कार्य उस बालक के समान ही है।

यदि वे स्थूल शब्द त्रस-स्थावर पर्याय को भी नहीं पकड़ सकते तो फिर हम आपके गुणों का वर्णन कैसे करते ? अभी तो हमने शेष चार परमेष्ठियों को आपमें शामिल करके, उनके गुणों को आपके ही गुण मान कर हम आपके गुणगान कर रहे हैं; क्योंकि वे भी तो निकट भविष्य के सिद्ध भगवान ही हैं।

भक्तामर भक्तिकाव्य में भी इसीप्रकार के भाव का पोषक एक छन्द प्रस्तुत किया गया है; जो इसप्रकार है हूँ

(बसंततिलका)

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

जिसप्रकार जल में पड़े हुए चन्द्रमा के प्रतिबिंब को सहसा ग्रहण करने की इच्छा बालक को छोड़कर अन्य कौन कर सकता है ? तात्पर्य यह है कि कोई समझदार बुद्धिमान व्यक्ति तो ऐसा कर नहीं सकता ।

उसीप्रकार हे विबुधार्चितपादपीठ ! इन्द्रों द्वारा पूजित हैं चरणकमल जिनके, ऐसे आदिनाथ भगवान् ! मैं बुद्धि के बिना ही निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने को तैयार हो गया हूँ ।

आचार्य मानतुंग कृत भक्तामर काव्य के इस छन्द का हिन्दी पद्यानुवाद पण्डित हेमराजजी ने इसप्रकार किया है ह

(चौपाई)

विबुधवंधपद मैं मतिहीन, हो निलज्ज थुति मनसा कीन ।
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै, शशि-मण्डल बालक ही चहै ॥३॥

जिसप्रकार पानी में पड़े चन्द्रमा के प्रतिबिंब को ग्रहण करने का भाव बालक ही करता है; कोई बुद्धिमान व्यक्ति नहीं; उसीप्रकार हे विबुधवंध आदिनाथ भगवन् ! मतिहीन मैंने निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने का मन बनाया है ।

इसके आगे के सभी छन्द पद्धरि छन्द हैं । उनमें से आरंभिक छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय पर-निमित्त व्यवहार त्याग, पायो निज शुद्धस्वरूप भाग ।
जय जग पालन बिन जगत देव, जय दयाभाव बिन शांतिभेव ॥३॥

हे सिद्ध भगवन् ! आपने पर-निमित्त और व्यवहार को त्याग कर निज शुद्धस्वरूप को प्राप्त किया है; अतः आपकी जय हो, जय हो ।

यद्यपि आपने जगत का पालन नहीं किया है, तथापि आप जगत के देव कहे जाते हैं । यद्यपि आप में दयाभाव नहीं है, तथापि आप शांतिस्वरूप हैं । अतः हे भगवन् ! आपकी जय हो, जय हो ।

इस छन्द में जो यह कहा गया है कि पर-निमित्त और व्यवहार को

त्याग कर ही अपने शुद्धस्वभाव को प्राप्त किया है; इसका तो स्पष्ट अर्थ यही है कि पर-निमित्त और व्यवहार के त्याग के बिना अपने शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं की जा सकती है; अतः जिन्हें अपने शुद्धस्वरूप रूप मुक्ति की प्राप्ति करनी है; वे लोग पर-निमित्त और व्यवहार का त्याग कर दें ।

तात्पर्य यह है कि मुक्ति के मार्ग में इनका त्याग अनिवार्य है ।

देखो, पूजन में भी ऐसा लिखा है कि पर, निमित्त और व्यवहार का त्याग कर देना चाहिए ।

दूसरी बात यह है कि भले ही सिद्ध भगवान् शान्तिस्वरूप हों, जगत के देव हों; पर वे जगत का पालन नहीं करते और उनमें दयाभाव नहीं होता; क्योंकि दयाभाव तो एक प्रकार का रागभाव ही है और वह चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होता है ।

जो मोहकर्म की संतान हो, मोहभावरूप ही हो; वह वास्तविक धर्म या निश्चय धर्म कैसे हो सकता है ?

भले ही उसे व्यवहार से धर्म कहें, व्यवहार धर्म कहें; पर वह रागभावरूप होने से, शुभरागरूप होने से वास्तविक धर्म नहीं हो सकता ।

तीसरी बात यह है कि भगवान् जगत का पालन नहीं करता, जगत की रक्षा नहीं करता; वह जगत का कर्ता-धर्ता नहीं है, वह जगत का नियन्ता भी नहीं है ।

इस छन्द में कही गई बातें जैनदर्शन की मूलभूत बातें हैं । इन्हें हमें ध्यान से सुनना-समझना चाहिए और भक्तिभाव से स्वीकार करना चाहिए ।

चौथा छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

पर सुखदुःखकरण कुरीति टार, पर सुख-दुःख कारण शक्ति धार ।
पुनि पुनि नव नव नित जन्मरीत, बिन सर्वलोक व्यापी पुनीत ॥४॥

यद्यपि 'एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्ता न मानकर' आपने इस

कुरीति को टाल दिया है, तथापि आप दूसरों को सुखी-दुःखीरूप करने की शक्ति के धारक हो ह्व ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

यद्यपि आप बार-बार निरन्तर नये-नये जन्म लेने की रीति से रहित हो; तथापि आप सर्वलोक को जानने की अपेक्षा से सर्वलोकव्यापी हैं।

देखो, इस छन्द में तो दूसरे जीवों को सुखी करने और दुखी करने को ही कुरीति कहा है और यह भी कहा है कि आपने ऐसी कुरीति को टाल दिया है, उसका निराकरण कर दिया है।

जब यह बात परम सत्य है कि कोई किसी का भला-बुरा नहीं करता और न ही कर सकता है; यहाँ तक कि अनन्त शक्ति के धारक भगवान भी किसी का भला-बुरा नहीं कर सकते; तब यह कहना कि किसी ने किसी का कुछ किया या भगवान ने किसी का कुछ किया कुरीति नहीं है तो और क्या है ?

ऐसी कुरीति को हे भगवान आपने टाल दिया है, निषेध कर दिया है। तात्पर्य यह है कि आपकी दिव्यध्वनि में यह आया है कि कोई किसी का कुछ नहीं करता। इससे आसन्न भव्य जीव की समझ में सब कुछ आ गया है और उनके जीवन में से भी ये कुरीतियाँ निकल गई हैं।

ये सब बातें जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों को कवि ने बड़ी ही चतुराई से पूजन साहित्य में, भक्ति साहित्य में डाल दिया है। इससे भगवान की पूजा-भक्ति करते समय भी लोगों को मूल तत्त्वज्ञान याद आता रहे।

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

जय लीला रास विलास नाश, स्वाभाविक निजपद रमण वास ।

शयनासन आदि क्रिया-कलाप, तज सुखी सदा शिवरूप आप ॥५॥

हे भगवन् ! जिसप्रकार अन्य देवगण लीला, रास, रासलीला आदि विलास करते हैं; आप ऐसा कुछ नहीं करते, अपितु आपने तो इन

सबका नाश कर दिया है, त्याग कर दिया है; फिर भी आप स्वाभाविक निजपद में रमण करते हुए वास करते हैं।

तात्पर्य यह है कि जगत में रासलीला आदि विलास में आनन्द माना जाता है; पर आप तो उन सबका त्याग करके भी अनन्त सुखी हैं।

इसीप्रकार आपने सोना, बैठना आदि क्रियाकलापों को भी तज दिया है; फिर भी आप सदासुखी हैं। शिवरूप हैं, मंगलस्वरूप हैं।

जगत में सोने-बैठने को आराम करना माना जाता है; परन्तु किसी भी आसन में सुख नहीं है, अपितु दुःख ही है, पीड़ा ही है; यदि ऐसा नहीं होता तो लोग आसन बदलते क्यों हैं ? जब एक आसन से बैठे-बैठे थक जाते हैं तो हम आसन बदल लेते हैं। आसन बदलना दुःख की निशानी है, सुख की नहीं।

इसके बाद आनेवाला छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

बिन कामदाह नहिं नार भोग, निरद्वन्द्व निजानन्द मगन योग ।

वरमाल आदि शृंगार रूप, बिन शुद्ध निरंजन पद अनूप ॥६॥

हे सिद्ध भगवन् ! आपके न तो कामदाह है और न नारी का उपभोग है; क्योंकि बिना कामदाह के नारी का उपभोग संभव नहीं है।

ऐसी स्थिति में आप पूर्णतः निर्द्वन्द्व होकर निजानन्द में मगन हो। निजानन्द में मगन ही आपका योग है; अतीन्द्रिय आनन्द का भोग है, उपभोग है।

जहाँ नारी आदि का संयोग होता है, वहाँ वरमाल आदि शृंगारिक वस्तुएँ होती हैं। आपका स्वरूप वरमाल आदि शृंगाररूप नहीं है। आप तो शृंगारादिक के बिना ही शुद्ध निरंजन अनुपम पद के धारी हैं।

तात्पर्य यह है कि जिन्हें दुनिया सुख कहती है, यद्यपि वे प्रवृत्तियाँ आप में एक भी नहीं हैं, आपने उन सबका त्याग कर दिया है; तथापि आप अनन्त सुखी हैं, आपको अनन्त अव्याबाध सुख प्राप्त हैं।

सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय धर्म भर्म वन हन कुठार, परकाश पुंज चिद्रूपसार ।
सुखकरण हरण दव सलिलधार, निज शक्ति प्रभाव उदय अपार ॥७॥

हे सिद्ध भगवन् ! धर्म के संबंध में होनेवाले भ्रमरूपी जंगल को काटने के लिए आप कुठार (कुल्हाड़ी) हैं, प्रकाश के पुंज हैं, चैतन्यरूप सारभूत पदार्थ हैं। सुख को करनेवाले साधनों का हरण करनेरूप दावाग्नि के लिए आप पानी की मोटी धार हैं, भयंकर मेघवर्षा हैं। आपकी अपनी शक्ति और प्रभाव का अपार उदय है।

तात्पर्य यह है कि यदि धर्म संबंधी भ्रम भयंकर जंगल है तो उसे काटने के लिए आप शक्तिशाली कुठार हो, कुल्हाड़ी हो; यदि सुखकारी उपवन को जलाने के लिए दावाग्नि लगी हो तो आप पानी की मोटी धार हो, बौछार हो।

आठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

नभ सीम नहीं अरु होत होउ, नहीं काल अन्त, लहो अन्त सोउ ।
पर तुम गुण रास अनंत भाग, अक्षय विधि राजत अवधि त्याग ॥८॥

यद्यपि आकाश की सीमा नहीं होती है; तथापि यदि आकाश की सीमा होनी है तो हो जावे; इसीप्रकार काल का अन्त भी नहीं होता है, यदि काल का अन्त होना हो तो वह भी हो जावे; परन्तु वे आपके गुणों की राशि के अनन्तवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते; क्योंकि आपके गुणों की राशि अक्षय अनन्त है, अक्षय अनन्तकाल तक शोभायमान रहनेवाली है।

तात्पर्य यह है कि आपके गुण अक्षय अनंत हैं; उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। न तो आकाश के प्रदेशों की अनन्तता और न काल के समयों की अनन्तता ह्व कोई भी आपके अक्षय अनन्त गुणों के बराबर नहीं है।

41

नौवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

आनन्द जलधि धारा-प्रवाह, विज्ञानसुरी मुखद्रह अथाह ।
निज शांति सुधारस परम खान, समभाव बीज उत्पत्ति थान ॥९॥

हे भगवन् ! आप आनन्द के अथाह सागर हो। आपके मुखरूपी सरोवर से धाराप्रवाह जिनवाणीरूप विशाल सरिता प्रवाहित हुई है।

हे भगवन् ! आप अपनी शान्तिरूपी सुधारस अर्थात् अमृत की उत्कृष्ट खान हो और समताभावरूपी बीज की उत्पत्ति के आप उत्पत्ति स्थान हो। तात्पर्य यह है कि हे आनन्द के सागर भगवन् ! दिव्यध्वनि की उत्पत्ति भी आपसे ही हुई है और आप शान्ति की खान हैं तथा समभाव के उत्पत्ति स्थान हैं।

दसवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

निज आत्मलीन विकल्प विनाश, शुद्धोपयोग परिणति प्रकाश ।
दृग ज्ञान असाधारण स्वभाव, स्पर्श आदि परगुण अभाव ॥१०॥

हे सिद्ध भगवन् ! निज भगवान आत्मा में लीन होकर आपने सम्पूर्ण विकल्पों का नाश कर शुद्धोपयोग परिणति को स्वयं में प्रकाशित किया है। आपका असाधारणस्वभाव ज्ञाता-दृष्टाभाव है और आप में स्पर्श आदि पुद्गलद्रव्य के गुणों का पूर्णतः अभाव है।

अपनी आत्मलीनता के बल पर विकल्पों का नाश करके आपने स्वयं शुद्धोपयोग परिणति को प्रकाशित कर यह सिद्धदशा प्राप्त की है।

इस छन्द की प्रथम पंक्ति में शुद्धोपयोगरूप सच्चे मोक्षमार्ग का कथन अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया है।

ग्यारहवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

निज गुणपर्यय समुदाय स्वामि, पायो अखण्ड पद परम धाम ।
अव्यय अबाध पद स्वयं सिद्ध, उपलब्धि रूप धर्मी प्रसिद्ध ॥११॥

हे भगवन् ! आप अपने गुण-पर्यायों के स्वामी हो, उनके समुदायरूप हो। आपने अपना अखण्ड पद और परमधाम प्राप्त किया है। आप अव्यय हो, आपका पद अबाध है, आप स्वयं सिद्ध हैं और आपने यह अबाधित सिद्धपद उपलब्ध किया है; अतः आप प्रसिद्ध धर्मी हैं।

तात्पर्य यह है कि आप प्रसिद्ध धर्मात्मा हैं।

न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ परीक्षामुख में एक सूत्र आता है, वह इसप्रकार है ह प्रसिद्धोधर्मी ह धर्मी प्रसिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि धर्मी प्रमाण से सिद्ध होता है, काल्पनिक नहीं।

यहाँ प्रसिद्ध का अर्थ विशेष प्रकार से सिद्ध। लोक में जिसकी प्रसिद्धि हो ह ऐसा अर्थ यहाँ नहीं है; अपितु जो प्रमाण से भलीभाँति सिद्ध हो, वही प्रसिद्ध है।

अनुमान के तीन अंग होते हैं ह पक्ष, साध्य और साधन। इनमें पक्ष को धर्मी, साध्य को धर्म और साधन को हेतु कहते हैं।

ध्यान रहे न्याय शास्त्र में धर्मी का अर्थ पक्ष होता है। जिसमें साध्य की सत्ता प्रमाण से सिद्ध होती है, उसे पक्ष या धर्मी कहते हैं।

उक्त धर्मी से यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ तो भक्ति के प्रकरण में धर्मी का सीधा-सादा अर्थ धर्मात्मा ही है।

बारहवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

एकाग्ररूप चिन्ता निरोध, जे ध्यावैं पावैं स्वयं बोध।

गुणमात्र 'संत' अनुराग रूप, यह भाव देहु तुम पद अनूप ॥१२॥

जो ज्ञानी जीव आपका या आप जैसे निज भगवान आत्मा का एकाग्रचिन्तानिरोध है स्वरूप जिसका ह ऐसा ध्यान करते हैं; वे स्वयं बोध को प्राप्त होते हैं, केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यह सन्त कवि आपके गुणों में अनुराग रखता है, इसकारण हे भगवन् ! आप मुझे अनुपम पद प्रदान करें।

तात्पर्य यह है कि मैं भी आपकी कृपा से एकाग्रचिन्तानिरोधात्मक ध्यान से अनुपम सिद्धपद की प्राप्ति अवश्य करूँगा।

जयमाला के अन्त में दो दोहे उपलब्ध होते हैं; उनमें पहला दोहा इसप्रकार है ह

(दोहा)

सिद्ध सुगुण सुमरण महा, मंत्रराज है सार।

सर्व सिद्धि दातार है, सर्व विघ्न हतार ॥१३॥

सिद्धों के सुगुणों का स्मरण ही सारभूत मंत्रराज है। वह सभी सिद्धियों को देनेवाला और सभी विघ्नों का हरण करनेवाला है।

निष्कर्ष के रूप में कवि कहते हैं कि सिद्धों के गुणों का स्मरण ही महामंत्र है और एकमात्र सारभूत है; क्योंकि विघ्नों का नाश और सिद्धियों की प्राप्ति एकमात्र इससे ही होती है।

दूसरा दोहा और १४वाँ छन्द इसप्रकार है ह

(दोहा)

तीन लोक चूड़ामणी, सदा रहो जयवन्त।

विघ्न हरण मंगल करण, तुम्हें नमैं नित 'संत' ॥१४॥

हे तीन लोक के चूड़ामणि सिद्ध भगवन् ! आप सदा ही जयवन्त रहें; क्योंकि आप विघ्नों के हरण करनेवाले और मंगल को करनेवाले हैं। संत कवि अथवा सज्जन पुरुष आपको सदा ही नमस्कार करें या करते हैं।

तीन लोक के चूड़ामणि माने तीन लोक के सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित या सर्वोच्च दशा को प्राप्त सिद्ध भगवान सदा जयवन्त रहें ह ऐसी भावना इस छन्द में व्यक्त की गई है; क्योंकि वे सिद्ध भगवान विघ्नविनाशक और मंगल करनेवाले हैं।

इसप्रकार अन्त में सन्त कवि उन्हें नमस्कार करते हैं। ●

सातवीं पूजन की जयमाला

सिद्धचक्र विधान लिखनेवाले महाकवि संतलालजी द्रव्य पूजन की असलियत बताते हुए सातवीं पूजन के चन्दनवाले छन्द में एक ऐसी बात लिखते हैं कि जो बात गंभीरता से विचार करने योग्य है।

चन्दन संबंधी उक्त छन्द इसप्रकार है ह

(चाल बारहमासा)

न तु कोऊ चन्दन न तु कोऊ केसरि, भेंट किये भवपार भयो है।
केवल आप कृपा-दृग ही सों, यह अथाह दधि पार लयो है ॥
रीति सनातन भक्तन की लख, चन्दन की यह भेंट धरामी।
द्वादश अधिक पंचशत संख्यक, नाम उचारत हूँ सुखधामी ॥२॥

आजतक कोई भी व्यक्ति न तो चन्दन भेंट करने से और न केशर भेंट करने से इस संसार सागर से पार हुआ है। इस अथाह सागर से पार होने के लिए तो केवल आपकी कृपादृष्टि ही पर्याप्त है।

इस पर यदि कोई कहे कि फिर आप यह चन्दन क्यों चढ़ाते हो तो उससे कहते हैं कि मैं भव्यों की सनातन रीति देखकर ही चन्दन की यह भेंट प्रस्तुत करता हूँ। हे सुखधामी भगवन् ! मैं ५१२ नामों का उच्चारण कर आपकी पूजन करता हूँ।

पूजन की उक्त पंक्तियों में अत्यन्त स्पष्टरूप से यह घोषणा की गई है कि चन्दन चढ़ाने, केशर चढ़ाने से आजतक तो कोई इस संसार सागर से पार हुआ नहीं है, किसी का कल्याण हुआ ही नहीं है।

बात मात्र चन्दन-केसर की नहीं है; अपितु आठों द्रव्यों की है, सम्पूर्ण द्रव्य पूजन की है। ध्यान रहे, यहाँ सम्पूर्ण द्रव्य पूजन पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया गया है।

अंत में जो समाधान प्रस्तुत किया गया है, वह भी मात्र इतना ही है कि भक्तों की रीति देखकर ही यहाँ चन्दन की भेंट प्रस्तुत की जा रही है।

तात्पर्य यह है कि यह तो मात्र देखादेखी से किया गया कार्य है।

प्रश्न ह देखादेखी से किया गया कार्य है ह यह कहकर आप क्या कहना चाहते हैं ? क्या अष्ट द्रव्य से पूजन करना ठीक नहीं है ?

उत्तर ह नहीं, ऐसा तो मैंने नहीं कहा। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि यह तो मात्र औपचारिक कार्य है; इससे कर्मबंधन कटेंगे नहीं।

यदि शुभभाव हुए तो पुण्यबंध अवश्य होगा; क्योंकि परद्रव्य की क्रिया से न तो पुण्य-पाप बंधते हैं और न कर्म कटते हैं। तथापि भावपूजा के साथ-साथ द्रव्यपूजन करने के भाव भी ज्ञानी धर्मात्माओं को आते अवश्य हैं, आये बिना रहते नहीं हैं; पर वे उनकी असलियत समझते हैं और भूमिकानुसार यथायोग्य आचरण करते हैं।

ऐसा ही विरोधाभास पुष्प के छन्द में भी प्रस्तुत किया गया है; जो इसप्रकार है ह

(चाल बारहमासा)

पुष्पवाण सों ही मन्मथ जगविजई जग में नाम धरावे।
देखहु अद्भुत रीति भक्त की, तिस ही भेंट धर काम हनावे ॥
शरणागत की चूक न देखी, तातैं पूज्य भये शिरनामी।
द्वादश अधिक पंचशत संख्यक, नाम उचारत हूँ सुखधामी ॥४॥

हे भगवन् ! जिस पुष्पबाण के बल पर यह कामदेव जगत में जगविजेता के नाम से पुकारा जाता है; देखो भक्तों की कैसी अद्भुत रीति है कि यह उसी पुष्पबाण की भेंट प्रस्तुत कर कामदेव का नाश करना चाहता है; पर आपने शरण में आये हुए भक्त की गलती पर जानकर भी ध्यान नहीं दिया; यही कारण है कि आप जगतशिरोमणि होकर पूज्य हुए हैं। हे सुखधामी भगवन् ! मैं ५१२ नामों का उच्चारण कर आपकी पूजन करता हूँ।

इस पुष्प के छन्द में भी भक्तों की अद्भुत रीति पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाया गया है। कहा गया है कि देखो जिस पुष्पबाण से इस

कामदेव ने सारे जगत को जीत लिया है और जगविजयी की पदवी प्राप्त की है; उसी पुष्पबाण को प्रस्तुत कर यहाँ कामपीड़ा से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

यह बात जुदी है कि भगवान ने शरण में आये हुए भक्त की गलती नहीं देखी। गलती नहीं देखने से गलती मिट नहीं जाती। गलती मिटाने के लिए गलती करना छोड़ना पड़ता है।

ये दो छन्द तो यहाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। पूरे विधान में ऐसे अनेक स्थान हैं; जहाँ इसप्रकार की बातें मिल जाती हैं।

जो भी हो, इन प्रयोगों पर गंभीरता से मनन कर विचार करना चाहिए; क्योंकि ये मात्र अलंकारिक प्रयोग नहीं हैं; इनके माध्यम से कवि कुछ कहना चाहता है।

कवि का कहना यह है कि ये सब क्रियाएँ तो बस व्यावहारिक औपचारिकता ही हैं; इनके भरोसे संसार सागर पार नहीं किया जा सकता। संसार सागर तो निश्चय नय से प्ररूपित परमार्थ मार्ग से ही पार किया जा सकता है और वह परमार्थ मार्ग निज भगवान आत्मा की आराधनारूप है, साधनारूप ही है। भगवान आत्मा की आराधना तो स्वयं को जानना, स्वयं में ही अपनापन स्थापित करना और स्वयं में ही जमने, रमनेरूप है, स्वयं के ही ध्यान करनेरूप है।

फल के छन्द में कवि स्वयं ही सबकुछ स्पष्ट कर देते हैं ह

(चाल बारहमासा)

तुम हो वीतराग निज पूजन, बन्दन थुति परवाह नहीं है।

अरु अपने समभाव वहै कछु, पूजा फल की चाह नहीं है॥

तौ भी यह फल पूजि फलद, अनिवार निजानन्द कर इच्छामी।

द्वादश अधिक पंचशत संख्यक, नाम उचारत हूँ सुखधामी॥८॥

हे भगवन् ! आप तो वीतराग हैं; इसलिए आपको स्वयं की पूजन-वन्दन और स्तुति कराने की परवाह नहीं है। और मेरे (ज्ञानी भक्त के) भी समताभाव के निरन्तर बहते रहने से 'पूजन करने से कुछ फल की

प्राप्ति होगी' इसप्रकार की कोई लौकिक आकांक्षा-वांछा नहीं है। फिर भी हे भगवन् ! यह फल देनेवाली फल पूजा करके मैं अनिवार्यरूप से प्राप्त होनेवाले निजानन्द की कामना करता हूँ।

हे सुखधामी भगवन् ! मैं ५१२ नामों का उच्चारण कर आपकी पूजन करता हूँ।

इस फल के छन्द में ज्ञानी धर्मात्मा भक्त की पूजन की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कर दिया गया है।

कहा गया है कि हे भगवन् ! आपकी स्थिति तो यह है कि आप पूर्ण वीतरागी हैं; अतः आपको अपनी पूजन, वन्दन और स्तुति कराने की रंचमात्र भी परवाह नहीं है, इच्छा-आकांक्षा नहीं है और मैं आपका भक्त भी अंशतः वीतरागी अथवा वीतरागता का अनुगामी होने से और थोड़ा-बहुत समभावी होने से मुझे भी पूजन से प्राप्त होनेवाले लौकिक फल की आकांक्षा नहीं है।

न आपको परवाह है और न मुझे चाह है तो भी यह फलद फल-पूजा हो रही है, की जा रही है; इसके फल में मैं निजानन्द की, आत्मानन्द की ही कामना करता हूँ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि यह पूजन-भक्ति का कार्य सहजभाव से ऐसे ही चल रहा है; क्योंकि न तो जिन की पूजन की जा रही है, उन्हें कोई विकल्प है और न पूजन करनेवाले को भी कोई लौकिक आकांक्षा है। फिर भी कुस्थान में राग न जाय, इसलिए तथा अशुभभाव से बचने के लिए ही यह सब उपक्रम है।

अब जयमाला के छन्दों का अर्थ आरंभ करते हैं। जयमाला के आरंभ में एक दोहा है; जो इसप्रकार है ह

(दोहा)

रत्नत्रय भूषित महा, पंच सुगुरु शिवकार।

सकल सुरेन्द्र नमें नमूँ, पाऊँ सो गुणसार॥१॥

रत्नत्रयरूपी आभूषणों से पूरी तरह विभूषित पंचपरमेष्ठी भगवान

कल्याण करनेवाले हैं। उन पंचपरमेष्ठी भगवन्तों को स्वर्गों के सभी इन्द्र नमस्कार करते हैं। मैं भी उक्त पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करके सारभूत गुणों की प्राप्ति करना चाहता हूँ।

हम आरंभ से ही देखते आ रहे हैं कि सिद्धों की पूजन के इस आयोजन में, सिद्धचक्र की पूजन में लगभग प्रत्येक जयमाला के आरंभ में पंचपरमेष्ठियों को स्मरण करते आ रहे हैं। कभी-कभी तो लगता है कि यह सिद्धचक्र विधान है या पंचपरमेष्ठी विधान है।

इस सातवीं पूजन में तो पाँचों परमेष्ठियों को सौ-सौ अर्घ्य चढ़ाये जा रहे हैं।

कविवर सन्तलालजी समय-समय पर यथास्थान यह स्पष्ट करते आ रहे हैं कि यदि हम सिद्धों में सभी परमेष्ठियों को शामिल नहीं करते तो सिद्धों की इतनी बड़ी पूजन में सिद्धों के किन गुणों को स्मरण करते?

यह सातवीं पूजन वही पूजन है, जिसमें साधुओं को सिद्धों के समान बताया गया है। अनेक छन्दों में कहा गया है कि ह

मैं नमूँ साधु सम सिद्ध अकम्प विराजे

इस पंक्ति को कवि ने अचरी के रूप में ४७ बार दुहराया है। इसी पंक्ति से प्रभावित होकर मैंने देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला में सन् १९५७ में लिखा था कि ह

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु चरणों में शीश झुकाते हैं।

हम चलें आपको कदमों पर नित यही भावना भाते हैं।।

इसी पूजन में मुनिराजों को मुक्ति की साधना करनेवाला कहा है और मोक्षमार्ग और मोक्ष का श्रेय साधुओं को दिया गया है।

जिन पंक्तियों में ये बातें कही गई हैं, वे पंक्तियाँ इसप्रकार हैं ह

१. साधुभये शिव साधन हारे।

२. सो सब साधु वरें शिवनारी।

३. मोक्षमार्ग वा मोक्ष श्रेय सब साधु हैं।

45

मात्र साधु परमेष्ठी ही नहीं; आचार्य, उपाध्याय परमेष्ठी को भी इसीप्रकार याद किया गया है।

एक स्थान पर तो उपाध्यायों को एक प्रकार से सिद्धों में ही शामिल कर लिया गया है।

पाठक गुण संभवे सिद्ध प्रति नमन हमारा।

आगे के अधिकतर छन्द पद्धरि छन्द में लिखे गये हैं। उनमें से आरंभिक छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय महा मोहदल दलन सूर, जय निर्विकल्प आनन्दपूर।

जय द्वैविध कर्म विमुक्त देव, जय निजानन्द स्वाधीन एव ॥२॥

हे भगवन् ! आप महामोहरूपी राजा की सेना को पराजित करने में शूरवीर हैं। आपकी जय हो। हे भगवन् ! आपमें निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आ रही है। आपकी जय हो। हे भगवन् ! आप द्रव्यकर्म और भावकर्म ह इन दो प्रकार के कर्मों से मुक्त हो गये हैं; अतः आपकी जय हो। हे भगवन् ! आप स्वाधीन निजानन्दमय ही हैं। आपकी जय हो। जय हो, जय हो।

अगला छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

जय संशयादि भ्रमतम निवार, जय स्वामि भक्ति द्युति थुति अपार।

जय युगपत सकल प्रत्यक्ष लक्ष, जय निरावरण निर्मल अनक्ष ॥३॥

हे भगवन् ! आपने संशय, विभ्रम और विमोहरूप अज्ञानांधकार का नाश कर दिया है; इसलिए आपकी जय हो।

संशय, विभ्रम और विमोह ह ये तीन ज्ञान के दोष हैं। इनके दूसरे नाम संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय भी हैं।

दो कोटियों में ज्ञान का झूलना संशय है। जैसे ह यह बगुला है या ध्वजा ह पताका।

उल्टा निर्णय हो जाना विपर्यय है। जैसे ह्व है तो ध्वजा और मान लेना बगुला।

अनिर्णय की स्थिति में रहना अनध्यवसाय है। होगा कुछ ह्व ऐसा सोचना।

ये तीनों सम्यग्ज्ञान के दोष हैं और आपने इनका निवारण कर दिया है; इसलिए आपकी जय हो, जय हो।

हे स्वामी ! आपकी भक्ति, आपकी द्युति और आपकी स्तुति ह्व ये अपार हैं।

हे भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण जगत को एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हो; क्योंकि आपका ज्ञान निरावरण है, निर्मल है और इन्द्रियों से उत्पन्न नहीं होता, आप सभी पदार्थों को सीधा आत्मा से ही जानते हैं, इन्द्रियों से नहीं; इसलिए आपका ज्ञान अनक्ष है, इन्द्रियातीत है, विकल्पातीत है।

अक्ष शब्द का अर्थ आत्मा भी होता है और इन्द्रियाँ भी होता है। अतः इस शब्द का अर्थ करते समय हमें प्रकरण के अनुसार यह देखना चाहिए कि यहाँ अक्ष शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है; अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

यहाँ भगवान के ज्ञान को अनक्ष कहा गया है। अतः यहाँ अक्ष का अर्थ इन्द्रियाँ होगा, आत्मा नहीं; क्योंकि सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान इन्द्रियातीत होता है, आत्मातीत नहीं।

अगला छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

जय जय जय सुखसागर अगाध, निरद्वन्द्व निरामय निर-उपाधि।

जय मनवचतन व्यापार नाश, जय थिरसरूप निज पद प्रकाश ॥४॥

हे अगाध सुख के सागर भगवन् ! आप मानसिक द्वन्दों से रहित हो, शारीरिक बीमारियों से रहित हो और बाहरी उपाधियों से भी रहित हो।

मानसिक संकल्प-विकल्पों को द्वन्द्व कहते हैं, शारीरिक रोगों को

आमय कहते हैं और बाहरी विपत्तियों को उपाधि कहते हैं। आप तीनों से रहित हो; इसलिए निर्द्वन्द्व, निरामय और निर-उपाधि हो; इसकारण ही सुख के सागर हो। इसलिए आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

मानसिक बीमारियों को आधि कहते हैं, शारीरिक बीमारियों को व्याधि कहते हैं और बाहरी तकलीफों को उपाधि कहते हैं।

आधि, व्याधि और उपाधि से रहित अवस्था को समाधि कहते हैं।

हे सिद्ध भगवन् ! आपने मन, वचन और काय के व्यापार (हलचल) का नाश कर दिया है; इसलिए आपकी जय हो। आप स्थिरस्वरूप निजपद के प्रकाशक हैं, प्रकाश के पुंज हैं। इसलिए आपकी जय हो।

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

जय पर-निमित्त सुख-दुख निवार, निरलेप निराश्रय निर्विकार।

निज में पर को पर में न आप, परवेश न हो नित निर-मिलाप ॥५॥

हे भगवन् ! आपने पर अथवा निमित्त के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले लौकिक सुख-दुखों का निवारण कर दिया है। इसलिए आप कर्मों के लेप से रहित हो गये हो, आपको पर के आश्रय की आवश्यकता नहीं रही है और आपके सभी विकार समाप्त हो गये हैं; इसलिए आप निर्लेप, निराश्रय और निर्विकारी हो गये हो।

यहाँ निर्लेप का अर्थ द्रव्यकर्मों से रहित है और निर्विकार का अर्थ भावकर्मों से रहित है।

न तो आप में पर का प्रवेश है और न पर में आपका प्रवेश है; अतः आप पर से नित निरमिलाप हो गये हैं। तात्पर्य यह है कि अब आपका पर से परस्पर कभी मिलाप नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि अब कभी भी आपको देहादि का संयोग नहीं होगा।

यह अज्ञानी जगत अपने लौकिक सुख-दुःखों का कारण पर को मानता है, निमित्तों को मानता है; जबकि यह बात एकदम गलत है;

क्योंकि कोई किसी के सुख-दुःख का कारण हो तो स्वयं के द्वारा किये गये सभी कर्म निरर्थक हो जायेंगे।

आचार्य अमितगति कृत सामायिक पाठ में कहा है कि ह

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा

जीवन-मरण और सुख-दुःख कोई किसी को दे सकता है ह यदि ऐसा माना जाये तो फिर स्वयं ने जो कर्म किए हैं; उनके फल का क्या होगा ?

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीव के जीवन-मरण और लौकिक सुख-दुःख स्वयं के पूर्वकृत कर्मों के उदय के अनुसार ही होते हैं।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

तुम परम धरम आराध्य सार, निज सम करि कारण दुर्निवार ।

तुम पंच परम आचार युक्त, नित भक्त वर्ग दातार मुक्त ॥६॥

हे भगवन् ! आप परम धर्म के सारभूत आराध्य हो, दुर्निवार कारणों को हटाकर मुझे स्वयं के समान बना लो। आप पाँच प्रकार के उत्कृष्ट आचार से युक्त अर्थात् पंचाचार से युक्त आचार्य परमेष्ठी हैं और अपने भक्तों को मुक्ति देनेवाले हो।

इस छन्द में सिद्ध भगवान को आचार्य परमेष्ठी के रूप में देखा गया है। यही कारण है कि उन्हें पंचाचार से युक्त बताया गया है।

सातवाँ छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

एकादशांग सर्वांग पूर्व, स्वैअनुभव पायो फल अपूर्व ।

अन्तर-बाहिर परिग्रह नसाय, परमारथ साधू पद लहाय ॥७॥

ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का अपूर्व फल जो स्वानुभव, उसको आपने प्राप्त कर लिया है। आपने १४ अंतरंग और १० बहिरंग परिग्रहों का नाश कर दिया है, अभाव कर दिया है, इसप्रकार आपने परमार्थ साधु पद प्राप्त कर लिया है।

इस छन्द में उपाध्याय और साधु परमेष्ठी को सिद्धों में शामिल कर लिया है। ऊपर की पंक्ति में उपाध्याय और नीचे की पंक्ति में साधु परमेष्ठी को समाहित किया गया है।

इसप्रकार हे सिद्ध भगवन् ! आप ही अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु हो। तात्पर्य यह है कि अरहंतादि सभी परमेष्ठी आप में ही समाहित हैं।

चूंकि इस सातवीं पूजन में पाँचों परमेष्ठियों को सौ-सौ अर्घ्य चढ़ाये गये हैं। अतः जयमाला में भी पाँचों परमेष्ठियों को याद कर रहे हैं।

आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों के नाम का उल्लेख तो स्पष्ट रूप में हो ही गया है। उसके पहले जो चर्चा की है, वह मुख्यरूप से सिद्ध और अरहंत परमेष्ठी की ही है।

प्रारंभिक दोहे में भी पंच सुगुरु शिवकार कहकर पंचपरमेष्ठियों को ही याद किया गया है।

अन्तिम पद्धरि छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धरि छन्द)

हम पूजत निज उर भक्ति ठान, पावें निश्चय शिवपद महान ।

ज्यों शशि किरणावलि सियर पाय, मणि चन्द्रकांति द्रवता लहाय ॥८॥

हे भगवन् ! हम हृदय में भक्ति स्थापित करके आपकी पूजन कर रहे हैं। इसके फल में हमें निश्चय से महान शिवपद की प्राप्ति हो।

तात्पर्य यह है कि हम किसी लौकिक कामना को लेकर आपकी पूजन नहीं कर रहे हैं; हमारी कामना तो एकमात्र मुक्ति प्राप्त करने की है।

उक्त छन्द में इस बात की मुख्यता नहीं है कि सिद्ध भगवान की पूजन करने से मुक्ति मिलेगी या नहीं; यहाँ तो यह भावना प्रधान है कि हम जो कुछ कर रहे हैं, वह मुक्ति पद प्राप्त करने की कामना से कर रहे हैं।

यद्यपि हमारी भावना लौकिक वस्तुओं को प्राप्त करने की नहीं है, तथापि फिर जो होगा, सो होगा।

यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि आप कर्तृत्व भार से पूर्णतः रहित हैं; आप तो कुछ नहीं करते; तथापि जिसप्रकार चन्द्रमा की किरणों से शीतलता प्राप्त करके चन्द्रकान्तमणि स्वयं द्रवित होने लगता है; उसीप्रकार आपकी किरणावली से ठंडक पाकर हम लोग ही द्रवित हो जायेंगे।

इसके बाद एक घत्तानन्द नामक छन्द है; जो इसप्रकार है ह

(घत्तानन्द)

जय भव-भयहारं, बन्धविडारं, सुखसारं शिवकरतारं।

नित 'संत' सु ध्यावत, पाप नसावत, पावत पद निज अविकारं ॥९॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप संसार के भय को हरनेवाले हैं, अष्ट कर्मों के बंध का विदारण करनेवाले हैं, मुक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं और सुख के सार हैं। संत कवि कहते हैं कि संत लोग आपका निरन्तर ध्यान करते हैं, अपने पापों को नष्ट करते हैं और अविकारी निजपद की प्राप्ति करते हैं।

अन्त में एक सोरठा है; जो इसप्रकार है ह

(सोरठा)

तुम गुण अमल अपार, अनुभवतें भव-भय नशै।

'संत' सदा चित धार, शांति करो भवतप हरो ॥१०॥

हे भगवन् ! आपके अमल गुण अपार हैं; उनका अनुभव करने से संसार का भय नष्ट हो जाता है।

संत कवि कहते हैं कि उन गुणों को सदा ही अपने चित्त में धारण करो। हे भगवन् ! शान्ति प्रदान करें और संसार का ताप हरण कीजिए।

इसप्रकार हम देखते हैं कि सर्वत्र ही मुक्ति की कामना की गई है; लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति की नहीं। ●

आठवीं पूजन की जयमाला

इस आठवीं पूजन के जल के छन्द में आत्मा को तीर्थ कहा है। जिससे तिरा जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। प्रत्येक आत्मा का कल्याण अपने आत्मा को जानने, उसे ही निजरूप जानने, निजरूप मानने, उसमें ही अपनापन स्थापित करने, ध्यान करने से ही होता है।

अतः अपना आत्मा ही वास्तविक तीर्थ है।

जल के जिस छन्द में आत्मा को तीर्थ कहा गया है, वह छन्द इसप्रकार है ह

(गीता)

निज आत्मरूप सु तीर्थ मग नित सरस आनन्दधार हो।

नाशे त्रिविध मल सकल दुखमय भव-जलधि के पार हो ॥

यातैं उचित ही है जु तुम पद नीरसों पूजा करूँ।

इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ ॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप अपने आत्मरूपी तीर्थ के रास्ते पर निरन्तर चलकर आनन्दरूपी जल की सरस धार में डुबकी लगाकर आपने तीन प्रकार के कर्ममलों का सम्पूर्णतः नाश कर दिया है और आप अत्यन्त दुखमय संसार समुद्र से पार हो गये हो।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्मों ह इन तीनों कर्मों का नाश आपने कर दिया है; अतः आप त्रिविधमल नाशक हैं।

इसलिए यह उचित ही है कि मैं आपके चरण कमलों की जल से पूजा करूँ और आपके एक हजार चौबीस गुणों को अत्यन्त भावपूर्वक हृदय में धारण करूँ।

आठवीं पूजन के १०२४ अर्घ्यों में ९७९वें छन्द में दया से रहित सिद्ध भगवान को अर्घ्य चढ़ाया गया है; वह छन्द आज उपलब्ध पुस्तक में इसप्रकार छपा है ह

परदुख में दुख हो जहाँ, मोह प्रकृति के द्वार ।
दया कहैं तिसको सुमति, सो तुम मोह निवार ॥

मोहनीय कर्म के उदय से दूसरे के दुःख को देखकर जो दुःख होता है, उस दुःख को सम्यग्ज्ञानी जीव दया कहते हैं। हे सिद्ध भगवन् ! उस मोहनीय कर्म का निवारण आपने किया है।

इसकी ॐ ह्रीं भी इसप्रकार छपी है ह

ॐ ह्रीं अर्ह अत्यन्तनिर्मोहाय नमः अर्घ्य ।

पर मैंने जब सबसे पहली बार इस सिद्धचक्र विधान का अध्ययन किया था; तब जो पुस्तक मुझे प्राप्त हुई थी, उसमें यह छन्द इसप्रकार छपा था ह

परदुख में दुख हो जहाँ, मोह प्रकृति के द्वार ।
दया कहैं तिसको सुमति, सो तुम दया निवार ॥

उक्त दोनों छन्दों में मात्र इतना अन्तर है कि पुराने संस्करण में समागत छन्द के चतुर्थ पाद में दयानिवार पद था, जिसे आधुनिक संस्करण में मोहनिवार कर दिया गया है।

ॐ ह्रीं भी इसप्रकार थी ह ॐ ह्रीं अत्यन्तनिर्दयाय नमः अर्घ्य ।

जो परिवर्तन छन्द में किया गया; उसी के अनुसार ॐ ह्रीं में भी कर दिया गया है।

पर यह लोगों को अच्छा नहीं लगा, बरदाश्त नहीं हुआ कि सिद्ध भगवान को अत्यन्त निर्दयी कहा जाय। अतः इस अंश को बदल दिया गया। उक्त दोनों प्रतियों के बीच में जो बदली हुई प्रति मुझे प्राप्त हुई थी; उसमें मात्र इतना परिवर्तन था कि अत्यन्त निर्दयाय के स्थान पर दयारहिताय कर दिया गया था।

यह बहुत-कुछ ठीक था, पर लोगों को यह भी बरदाश्त नहीं हुआ तो अन्तिम कृति में न तो अत्यन्त निर्दयाय है और न दया रहिताय है; उसके स्थान पर अत्यन्त निर्मोहाय कर दिया गया है।

एक तो किसी कृति में परिवर्तन करने का अधिकार अन्य किसी को भी नहीं है; दूसरे जिस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संत कवि ध्यान आकर्षित करना चाहते थे, उनका यह प्रयास विफल हो गया।

तीसरी बात यह है कि आपने उन्हें गलत समझा और स्वयं को उनसे भी अधिक बड़ा विद्वान और समझदार समझा।

सिद्ध भगवान अनन्त सुखी हैं, अव्याबाधरूप से सुखी हैं; उन्हें दया नाम के दुःख से दुःखी जाना, माना और प्रस्तुत किया; जिससे वीतरागी भगवान भी रागी सिद्ध हुए।

मैं अधिक क्या कहूँ ? ऐसे लोग तो मेरे इस प्रस्तुतिकरण पर नाक-भौं सिकोड़ेंगे; पर मैं क्या कर सकता हूँ ? मैंने तो एक सत्य तथ्य को मात्र प्रस्तुत ही किया है।

यह परिवर्तन किसने किया, कब किया; इसका मुझे कुछ भी पता नहीं है; पर अभी जो चल रहा है; वह आपके सामने है।

यद्यपि यह प्रति हमारे यहाँ से ही छपी है; पर यह प्रति तो उस परिवर्तित प्रति के आधार पर ही छपी है।

मैंने स्वयं इस सिद्धचक्र विधान को अनेक जगह कराया है। जब मैं विधान की जयमालाओं का अर्थ करता, उन पर व्याख्यान करता तो इस छन्द पर सभी का ध्यान आकर्षित किया करता था।

कहता था कि देखो, पूजन-विधान में भी यह लिखा है कि सिद्ध भगवान अत्यन्त निर्दयी हैं और यहाँ सिद्ध भगवान को अत्यन्त निर्दयी होने के लिए अर्घ्य चढ़ाया जा रहा है, उनकी पूजा की जा रही है। तात्पर्य यह है कि निर्दयीपना भी पूज्य है।

उक्त छन्द में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि दया भाव मोहनीय कर्म के उदय का कार्य है। आठ कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे अधिक खतरनाक कर्म है। मोहनीय कर्म के उदय में मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव होते हैं; वे मिथ्यात्व और राग-द्वेष अनन्त संसार के कारण हैं।

यद्यपि दयाभाव शुभरागरूप भाव हैं; तथापि यह स्वयं दुःखरूप होता है। जैसा उक्त छन्द में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि पर के दुःख को देखकर जो दुःख हमें होता है; उसको सुमतिज्ञानवाले दया कहते हैं और यह दया मोहनीय कर्म के उदय में होती है।

यह दया आत्मा के प्रबल शत्रु मोहराजा की बेटी है।

इसप्रकार हमारे सिद्ध भगवान मोहनीय कर्म और मोहभाव के अभाव के कारण दयाभाव से रहित हैं। दयाभाव से रहित होने का नाम निर्दयभाव है; इसप्रकार सिद्ध भगवान वस्तुतः अत्यन्त निर्दय हैं। यह निर्दयता उनकी क्वालिटी है, डिस्क्वालिटी नहीं। यह ऐसी क्वालिटी है कि जो प्रशंसा के योग्य है, पूजने लायक है।

इसी सिद्धचक्र विधान की छठवीं पूजन की जयमाला के तीसरे छन्द में भी कहा है कि सिद्ध भगवान दयाभाव से रहित हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार गाथा ८५ में मनुष्य और तिर्यचों के प्रति करुणाभाव को मोह (मिथ्यात्व) का चिह्न कहा है।

उक्त संदर्भ में जिनको विशेष जानने की इच्छा हो, उन्हें प्रवचनसार की उक्त गाथा और उसकी आचार्य अमृतचन्द्र और आचार्य जयसेन कृत संस्कृत टीका देखना चाहिए।

जो लोग प्राकृत और संस्कृत नहीं जानते, उन्हें इस गाथा और उसकी टीका के भाव को सहज, सरल सुबोध हिन्दी में प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ गाथा ८५ का अनुशीलन का गहराई से स्वाध्याय करना चाहिए।

हिन्दी साहित्य के दिग्गज विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने करुणा नामक निबंध में लिखते हैं कि दूसरों के दुःख को देखकर जो दुःख होता है, उस दुःखरूप भाव का नाम ही दया है।

शुक्लजी का कथन मूलतः इसप्रकार है ह

“दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है, वह करुणा,

दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।”

एक अजैन विद्वान के ध्यान में यह बात आ गई कि करुणा-दया दूसरों के दुःख को देखकर होनेवाले दुःख का नाम है; पर हमारे साधर्मी भाइयों की समझ में स्वयं तो आता ही नहीं है, दूसरे के समझाने पर भी नहीं आता। क्या करें ? होनहार जानकर ही समता आती है।

यद्यपि लोक में यह दयाभाव-करुणाभाव बहुत अच्छा भाव माना जाता है। गुजरात में तो जीवदया नाम की अनेक संस्थाएँ चलती हैं और वे जीवदया का बहुत बढ़िया काम करती हैं।

महाकवि तुलसीदासजी लिखते हैं ह

दया धर्म का मूल है अर पाप मूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िए जबतक घट में प्राण ॥

ऐसे अनेक छन्द जैनधर्म की पुस्तकों में भी मिल जायेंगे।

इसी सिद्धचक्र विधान की चौथी पूजन की जयमालाओं में भी कुछ पंक्तियाँ आई हैं; जो इसप्रकार हैं ह

(चौपाई)

भावलिंग बिन कर्म खिपाई, द्रव्यलिंग बिन शिव पद पाई ॥३॥

नय विभाग बिन वस्तु प्रमाणा, दया भाव बिन निज कल्याणा।

यों अजोग कारज नहीं होई, तुम गुण कथन कठिन है सोई।

इन छन्दों में लिखा है कि जिसप्रकार भावलिंग के बिना कर्मों का नाश नहीं होता, द्रव्यलिंग के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, नय विभाग के बिना वस्तुएँ प्रमाणित नहीं होतीं और दयाभाव के बिना अपना कल्याण नहीं होता; उसीप्रकार आपके गुणों का कथन करना भी संभव नहीं है।

जैनदर्शन के अनुसार भी यह दुःखरूप दया का भाव शुभभाव है;

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध, करुणा, पृष्ठ ६०

अतः पुण्यबंध का कारण है। भले ही यह दयाभाव पुण्यबंध का कारण हो, पर बंध का ही कारण है, मुक्ति का कारण नहीं। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है।

यद्यपि व्यवहार से यह बहुत अच्छा भाव है; तथापि निश्चय से यह भाव दुःखरूप है, बंध का कारण है; इसलिए अरहंत और सिद्ध परमेष्ठी ने इसका अभाव कर दिया है। इसकारण वे परम पूज्य बने हैं।

व्यवहार में धर्म माननेवाले लौकिक जन तो इसे मानते ही हैं; ज्ञानीजनों के जीवन में भी यह भाव पाया जाता है, भरपूर पाया जाता है; परंतु यह दुःखरूप भाव है। दुःखरूप भाव अच्छा कैसे हो सकता है?

यह कर्मोदयजन्य भाव है, कर्मोदयजन्य भाव तो राग-द्वेषरूप ही होते हैं। यह भी रागरूप भाव है, दुःखरूप भाव है। जहाँ वीतराग भाव को धर्म माना गया हो, वहाँ यह रागरूप भाव धर्म कैसे हो सकता है ?

संसार में जितने जीव हैं, वे सभी दुःखी हैं और इस बात को अरहंत और सिद्ध भगवान केवलज्ञान द्वारा अत्यन्त स्पष्टरूप से जानते हैं; पर क्या वे उनके दुःखों को स्वयं दूर कर सकते हैं ?

यदि कर सकते होते तो आज कोई दुःखी दिखाई नहीं देता; क्योंकि वे सबका दुःख दूर कर ही देते।

यदि नहीं कर सकते तो फिर यदि उनके हृदय में दया उत्पन्न हुई और वे दुःख दूर न कर सके तो अनंत दुःखी हो जायेंगे।

दूसरों के दुःख को देखकर जो दुःख होता है वह यदि इसका नाम दया है तो फिर यह दुःखरूप दया अनंत सुखी भगवान को कैसे हो सकती है ?

दया को धर्म बतानेवाले जितने भी कथन जिनागम में प्राप्त होते हैं; वे सब व्यवहारनय से किये गये उपचरित कथन हैं और दुःखरूप दयाभाव को रागभावरूप होने से वीतरागी धर्म में बंध का कारण होने से हेय कहा गया है वह वे सब वचन वस्तुस्वरूप के आधार पर किये गये निश्चय कथन हैं, परमार्थ कथन हैं।

51

अतः इसे समझने के लिए निश्चय-व्यवहारनों का स्वरूप समझना होगा।

पूजन की उक्त पंक्तियों में भी कहा है कि ह्व नय विभाग विन वस्तु प्रमाणा ह्व नय विभाग को जाने बिना वस्तु का प्रामाणिक ज्ञान नहीं हो सकता।

जो कुछ भी हो, इस विषय को समझने के लिए बहुत गहरे चिन्तन-मनन की आवश्यकता है। यहाँ तो मात्र आप इतना समझ लीजिए कि इस पूजन-विधान में दयारहित भगवान को अर्घ्य चढ़ाया गया है।

यदि नयों के संबंध में विशेष जानने का भाव आया हो तो लेखक की अन्य कृति परमभावप्रकाशक नयचक्र का अध्ययन करना चाहिए।

जयमाला के आरंभ में तीन दोहे हैं; उनमें से पहला दोहा इसप्रकार हैह
(दोहा)

होनहार तुम गुण कथन, जीभ द्वार नहीं होय।

काष्ठ पाँवसँ अनल थल, नाप सकै नहीं कोय ॥१॥

जिसप्रकार कोई व्यक्ति अग्निमय जमीन को काठ के पाँव से नहीं नाप सकता; क्योंकि अग्निमय जमीन पर लकड़ी का पैर रखते ही वह जलने लगेगा। जिसप्रकार यह कार्य असंभव है; उसीप्रकार हे होनहार सिद्ध भगवान ! आपके गुणों का कथन इस जिव्हा के द्वारा संभव नहीं है।

इसप्रकार हम निरंतर देखते आ रहे हैं कि कवि बार-बार यह कहते हैं कि आपके गुणों का वर्णन करना मेरे वश की बात नहीं है।

मेरे ही क्या किसी के भी वश की बात नहीं है; फिर भी हम जो कुछ भी कह रहे हैं, लिख रहे हैं; वह सब हमारे हृदय में विद्यमान आपकी अपार भक्ति का ही परिणाम है।

दूसरा छन्द इसप्रकार है ह्व

(दोहा)

सूक्ष्म शुद्ध स्वरूप का, कहना है व्यवहार।

सो व्यवहारातीत हैं, यातें हम लाचार ॥२॥

वस्तु के अति सूक्ष्म शुद्धस्वरूप का कथन करना, कथनमात्र व्यवहार है और हे भगवन्! आप व्यवहारातीत हैं; इसलिए आपके गुण कथन करने में हम लाचार हैं।

तात्पर्य यह है कि हम आपके गुणों का कथन नहीं कर सकते।

जो बात विगत छन्द में कही थी; उसी बात को फिर नये रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं कि आपके या भगवान आत्मा के सूक्ष्म शुद्ध स्वरूप का कहना मात्र व्यवहार ही है। आपके या भगवान आत्मा के व्यवहारातीत होने से व्यवहार से भी मूल बात नहीं कर सकते। इसलिए हम अपनी लाचारी व्यक्त कर रहे हैं।

इसीप्रकार का भाव भक्तिकाव्य भक्तामर स्तोत्र में व्यक्त किया गया है; जो इसप्रकार है ह

(बसंततिलका)

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश

कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।

प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं

नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम

त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति

तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

यद्यपि आपके गुणों का वर्णन करना संभव नहीं है; तथापि हे मुनियों के ईश! शक्ति से रहित होने पर भी मैं आपकी भक्ति के वश होकर ही आपका स्तवन करने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

आखिर क्यों नहीं होता? क्या अपनी शक्ति का विचार किये बिना ही गाय गहरी प्रीति होने के कारण अपने शिशु के पालन-पोषण एवं रक्षा के लिए शेर के सामने आक्रमण करने को तैयार नहीं हो जाती है?

यद्यपि शेर के सामने गाय का जाना अपनी मौत को बुलाना ही है; तथापि यह जानते हुए भी गाय अपने बच्चे को बचाने के लिए शेर का सामना करने को तैयार हो जाती है। यद्यपि यह उसका दुस्साहस ही है; तथापि सन्तान के मोह में वह ऐसा दुस्साहस करती ही है।

उसीप्रकार आपका स्तवन करने का यह प्रयास मेरे लिए एक प्रकार से दुस्साहस ही है; तथापि आपकी भक्ति के वश होकर मेरे द्वारा यह दुस्साहस किया जा रहा है ॥५॥

यद्यपि मैं अल्पश्रुत हूँ, कम पढ़ा-लिखा हूँ; इसलिए जो श्रुतवान है, उनके लिए हँसी का पात्र हूँ; तथापि तुम्हारी भक्ति ही मुझे जबरदस्ती बोलने को बाध्य करती है, मुखर बनाती है।

यदि कोयल बसंत ऋतु में मधुर बोलती है, मीठा बोलती है तो उसका कारण एकमात्र आम की सुन्दर कली ही है।

जब बसंत ऋतु में आम के पेड़ों पर बोर आता है तो उसकी सुगंध से उल्लसित होकर कोयल कूकने लगती है, वह स्वयं को रोक नहीं पाती; उसीप्रकार महाकवि मानतुंग कहते हैं कि हे भगवन्! आपकी भक्ति मुझे आपके गुणगान करने के लिए इतना उत्साहित कर रही है कि मैं यह जानते हुए भी कि बहुश्रुत लोग मुझ अल्पश्रुत का इस भक्तिकाव्य के कारण परिहास करेंगे, मजाक उड़ायेंगे, मुझ से रुका नहीं जा रहा है; यह आपकी भक्ति मुझे मुखर बना रही है; मैं अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ। परिणामस्वरूप यह भक्तिकाव्य बन रहा है ॥६॥

इसीप्रकार का भाव संत कवि यहाँ व्यक्त कर रहे हैं।

तीसरा छन्द इसप्रकार है ह

(दोहा)

पै जो हम कछु कहत हैं, शान्ति हेत भगवन्त ।

बार बार थुति करन में, नहिं पुनरुक्त भनन्त ॥३॥

हे भगवन्! फिर भी हम जो कुछ भी अपनी शान्ति के लिए कह रहे

हैं; उसमें पुनरावृत्ति बहुत है। इसमें हमें एक बात साहस देती है कि स्तुति करने में जो पुनरुक्ति होती है; उसमें काव्यशास्त्र के अनुसार पुनरुक्ति नामक दोष नहीं लगता।

एक ही बात को बार-बार कहना पुनरुक्ति है। काव्य शास्त्र में एक पुनरुक्ति नामक दोष होता है; जो स्तुति काव्य में, भक्तिकाव्य में लागू नहीं पड़ता।

बातें तो बहुत हैं; क्योंकि आप अनंत गुणों के धनी हो; पर हम उनके बारे में कुछ विशेष नहीं कह सकते; इसलिए उन्हीं बातों को बार-बार दुहराते हैं, पुनरुक्ति करते हैं। खुशी की बात तो यह है कि काव्यशास्त्र के नियमानुसार स्तुति काव्य में पुनरुक्ति नामक दोष नहीं लगता।

इसके बाद पूरी जयमाला पद्धति छन्द में है। उनमें से आरंभिक छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धति छन्द)

जय स्वयं शक्ति आधार योग, जय स्वयं स्वस्थ आनंद भोग।

जय स्वयं विकास आभास भास, जय स्वयंसिद्ध निजपद निवास ॥४॥

हे भगवन् ! आप स्वयं की शक्ति के योग्य आधार हो और आप पूर्णतः स्व में स्थित हैं; इसलिए स्वस्थ हैं तथा अपने अतीन्द्रिय आनन्द का भोग निरन्तर करते रहते हैं।

आपने स्वयं के ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा का ज्ञान करके स्वयं का परिपूर्ण विकास किया है और स्वयंसिद्ध होकर निज पद में निवास कर रहे हैं। इसलिए आपकी जय हो, बारम्बार जय हो।

बार-बार प्रयोग में आ रहे जय और स्वयं शब्द यह बताते हैं कि आपने अपने में जो विकास किया है; वह स्वयं किया है, स्वयं के बल पर किया है; किसी दूसरे का रंचमात्र भी सहयोग नहीं लिया।

इस महान कार्य में दूसरे के सहयोग की व्यावहारिकता भी संभव

नहीं है। यही कारण है कि आप निरन्तर जयवंत हैं और रहेंगे; क्योंकि इसमें पराधीनता का, निमित्ताधीनता का अंश भी नहीं है।

अगला छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धति छन्द)

जय स्वयंबुद्ध संकल्प टार, जय स्वयं शुद्ध रागादि जार।

जय स्वयं स्वगुण आचार धार, जय स्वयं सुखी अक्षय अपार ॥५॥

हे भगवन् ! संकल्प-विकल्पों को टालकर आप स्वयंबुद्ध हुए हैं; इसलिए आपकी जय हो। रागादि भावों को जलाकर आप स्वयं शुद्ध हुए हैं, इसलिए आपकी जय हो। स्वयं पवित्र आचरण को धारण करके आप स्वयं गुणवान हुए हैं; इसलिए आपकी जय हो। अपने ज्ञानस्वभाव की साधना करके आप स्वयं अक्षय अपार सुखी हुए हैं; इसलिए आपकी जय हो, जय हो।

उक्त छन्द में यह कहा गया है कि हे भगवन् ! आप स्वयं शुद्ध हैं, स्वयं बुद्ध हैं, स्वयं अनंत गुणमय हैं और स्वयं ही कभी समाप्त न होनेवाले सुख से अपार सुखी हैं। तात्पर्य यह है कि आप जो कुछ भी हैं, वह सब स्वयं के आधार पर ही हैं।

अगला छन्द इसप्रकार है ह

(पद्धति छन्द)

जय स्वयं चतुष्टय राजमान, जय स्वयं अनन्त सुगुण निधान।

जय स्वयं स्वस्थ सुस्थिर अयोग, जय स्वयं स्वरूप मनोग योग ॥६॥

हे भगवन् ! आप स्वयं अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप स्वचतुष्टय और अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्यरूप अनन्त चतुष्टय से शोभायमान हैं; आपकी जय हो।

अधिक क्या कहें आप स्वयं ही अनन्त चतुष्टय के धारी हुए हैं। अनन्त गुण के निधान तो आप अनादि से ही हैं। आप स्वयं अपने अनंत गुणों के खजाने हो; आपकी जय हो।

आप स्वयं स्वयं में स्थित हो, अतः स्वस्थ हो; एक स्थान पर अचल रहने से सुस्थित हो और मन-वचन-काय ह्व इन तीन योगों से रहित होने से अयोग हो, अयोगी हो; इसलिए आपकी जय हो।

आप स्वयं अपने स्वरूप से मनोग्य हो; इसलिए आपकी जय हो, जय हो।

अगला छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

जय स्वयं स्वच्छ निज ज्ञान पूर, जय स्वयं वीर्य रिपु वज्र चूर।

जय महामुनिन आराध्य जान, जय निपुणमती तत्त्वज्ञ मान ॥७॥

आपके स्वच्छत्वशक्ति से सम्पन्न ज्ञानस्वभाव में जगत के सम्पूर्ण ज्ञेयों की बाढ़ आ रही है; इसलिए आपकी जय हो।

यह तो सर्वविदित है कि प्रत्येक आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, यह भगवान आत्मा शक्तियों का संग्रहालय है। उनमें से ४७ शक्तियों की चर्चा समयसार परमागम की आत्मख्याति टीका के परिशिष्ट में आई है। उनमें एक स्वच्छत्व नाम की शक्ति भी है, जिसके कारण आत्मा के स्वच्छ स्वभाव में सभी ज्ञेय झलकते हैं, प्रतिबिंबित होते हैं।

हे उछलती हुई वीर्यशक्ति से सम्पन्न भगवन् ! आपने स्वयं के वीर्य से कर्मरूपी शत्रुओं को चकनाचूर कर दिया है; इसलिए आपकी जय हो।

आत्मा में विद्यमान अनन्त शक्तियों में एक वीर्य नामक शक्ति भी है, जिसका काम स्वरूप की रचना करना है। इस वीर्य शक्ति का रूप सभी गुणों में रहता है। इसके प्रभाव से सम्पूर्ण गुण अपना-अपना कार्य करने में पूरी तरह सक्षम हैं, समर्थ हैं।

हे भगवन् ! आप महान मुनिराजों के आराध्य हो, इसलिए आपकी जय हो और आप तत्त्व के जानकारों द्वारा मान्य निपुणमति हो, पूर्णज्ञानी हो, सम्यग्ज्ञानी हो, केवलज्ञानी हो; अतः आपकी जय हो।

अरहंत भगवान किसी अन्य की आराधना नहीं करते। अतः यहाँ

महामुनि कहकर आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु ह्व इन तीन परमेष्ठियों द्वारा सिद्ध भगवान को आराध्य बताया गया है।

अगला छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

जय सन्तनि मन आनन्दकार, जय सज्जन चित वल्लभ अपार।

जय सुरगण गावत हर्ष पाय, जय कवि यश कथन न करि अघाय ॥८॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप सन्तों के मन को आनन्द देनेवाले हो; अतः आपकी जय हो। आप सज्जनों के चित्त को अत्यन्त प्रिय हो, अपार वल्लभ हो; अतः आपकी जय हो। आपके गुणों का गान करके देवता लोग अत्यन्त हर्षित होते हैं; अतः आपकी जय हो और कविगण आपके यश का कथन करते हुए अघाते नहीं हैं, आपका गुणगान कितना ही क्यों न करें, पर उन्हें तृप्ति नहीं मिलती, ऐसा लगता है कि करते ही रहें। इसलिए आपकी जय हो, जय हो।

इसप्रकार हे सिद्ध भगवान ! आप सन्तों, सज्जनों, देवताओं और कविगणों के आराध्य हो, वल्लभ हो, गेय हो और श्रद्धेय हो। आप इन सबके मन में सदा बसे रहते हो।

अगला छन्द इसप्रकार है ह्व

(पद्धरि छन्द)

तुम महातीर्थ भवि तरण हेत, तुम महाधर्म उद्धार देत।

तुम महामंत्र विष विघ्न जार, अघ रोग रसायन कहो सार ॥९॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप भव्य जीवों को संसार सागर से पार होने के लिए महान तीर्थ हो; तारनेवाली, पार उतारनेवाली नौका हो; भव्यों के उद्धार के लिए महान धर्म हो; विघ्नरूपी विष को उतारने के लिए आप महामंत्र हो और पुण्य-पापरूप अघ रोग को दूर करने के लिए आप सारभूत रसायन हो, दवा हो, रामबाण औषधि हो; इसलिए आपकी जय हो, जय हो।

महातीर्थ, महाधर्म, महामंत्र, महारसायन हूँ जगत में जो कुछ भी महान है; वह सब कुछ आप ही हो।

अगला छन्द इसप्रकार है हूँ

(पद्धरि छन्द)

तुम महाशास्त्र का मूल गेय, तुम महातत्त्व हो उपादेय।

तिहूँ लोक महामंगल सु रूप, लोकत्रय सर्वोत्तम अनूप ॥१०॥

हे सिद्ध भगवन् ! आप महान शास्त्रों के मूलभूत गेय हो। तात्पर्य यह है कि सभी महान शास्त्र मूलतः आपके ही गीत गाते हैं।

दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि आप महान ज्ञेय हैं और ये सभी महान शास्त्र आपका स्वरूप बतानेवाले हैं।

हे भगवन् ! आप अत्यन्त उपादेय महान तत्त्व हो। आप तीन लोक के महामंगलस्वरूप परम पदार्थ हो और तीन लोक में अनुपम हो, अद्वितीय हो और सर्वोत्तम हो, सबसे महान हो।

इसप्रकार जगत में जो कुछ भी अद्वितीय सर्वोत्तम है; वह सब कुछ एकमात्र आप ही हो।

अगला छन्द इसप्रकार है हूँ

(पद्धरि छन्द)

तिहूँ लोक शरण अघहर महान, भवि देत परमपद सुख निधान।

संसार महासागर अथाह, नित जन्म मरण धारा प्रवाह ॥११॥

सो काल अनन्त दियो बिताय, तामें झकोर दुख रूप खाय।

मो दुखी देख उर दया आन, इम पार करो कर ग्रहण पान ॥१२॥

पुण्य-पापरूप अघ का हरण करनेवाले तीन लोक में एकमात्र शरणभूत महान पदार्थ आप ही हो; भव्य जीवों को सुख का निधान परम पद सिद्धदशा आप ही देते हो। इस अथाह संसाररूप महासागर में जन्म-मरण धारप्रवाह रूप से धारण करते आ रहे अनन्त जीवों ने अनन्त काल बिता दिया है और उसमें अनन्त दुःख पाये हैं, झकोरे

खाते-खाते यहाँ-वहाँ चतुर्गति परिभ्रमण कर रहे हैं। उनमें मैं भी एक हूँ। हे सिद्ध भगवन् ! दुखी देखकर मुझे दुखिया पर हृदय में दयाभाव लाकर मुझे इस संसार सागर से हाथ पकड़कर पार कर दो, पार उतार दो।

जिसप्रकार जगत में लोग अबोध बालक को हाथ पकड़ कर नदी-नाले पार कराते हैं; उसीप्रकार हे भगवन् ! मुझे अबोध बालक का हाथ पकड़कर इस संसार सागर से पार करा दो।

अगला छन्द इसप्रकार है हूँ

(पद्धरि छन्द)

तुम ही हो इस पुरुषार्थ जोग, अरु है अशक्त करि विषय रोग।

सुर नर पशु दास कहें अनन्त, इनमें से भी इक जान 'सन्त' ॥१३॥

हे सिद्ध भगवन् ! इस महान पुरुषार्थ करने के योग्य एकमात्र आप ही हो। तात्पर्य यह है कि मेरा कल्याण तो हे भगवन् ! आपके द्वारा ही संभव है; क्योंकि जगत के अन्य देवी-देवता तो स्वयं ही विषयरोग से ग्रस्त हैं, अतः अशक्त हैं। वे क्या कर सकते हैं ?

संत कवि कहते हैं कि हे भगवन् ! देवता, मनुष्य और पशुओं में आपके दास तो अनंत जीव हैं; उनमें ही इस संत को भी आप अपना दास ही समझिये।

कृपा कर मेरा उद्धार आप अवश्य कर दें।

अगला छन्द इसप्रकार है हूँ

(घत्ता कवित्त)

जय विघन जलधि जल हनन पवन बल सकल पाप मल जारन हो।

जय मोह उपल हन वज्र असल दुख अनिल ताप जल कारन हो ॥

ज्यूं पंगु चढ़ै गिर, गूंग भरे सुर, अभुज सिन्धु तर कष्ट भरै।

त्यो तुम थुति काम महा लज ठाम, सु अंत 'संत' परणाम करै ॥

हे भगवन् ! आप विघ्नरूपी सागर के जल का हनन करनेवाले पवन हो; यह तो सारी दुनिया जानती है कि पवन पानी को उड़ा देता है

और वह पवन अग्नि को उत्तेजित कर प्रज्वलित कर देता है। उस पवन के बल से आप सम्पूर्ण पापरूपी मल को जलानेवाले अनिल हो।

आप मोहरूपी पत्थर को तोड़नेवाले वज्र हो, असली दुखरूपी अग्नि के ताप को मेंटने के कारणरूप जल हो। आपकी जय हो, जय हो।

जल अग्नि को बुझा देता है, अग्नि के संताप को कम कर देता है। यह भी सर्वविदित तथ्य है।

हे भगवन् ! आपकी भक्ति का काम मेरे लिए वैसा ही है; जैसा कि लंगड़ा व्यक्ति पर्वत पर चढ़ने का प्रयास करे, गूंगा व्यक्ति स्वर भरे और अभुज माने भुजाओं से रहित व्यक्ति अर्थात् लूला व्यक्ति समुद्र को तैरकर पार करने का कष्ट उठाये। उसीप्रकार मेरे लिए आपकी स्तुति करने का काम महा लज्जा का स्थान है। अतः अन्त में यह संत कवि आपको प्रणाम करता है।

इसके बाद आठवीं पूजन की जयमाला के अन्त में एक दोहा दिया गया है; जो इसप्रकार है ह

(दोहा)

तीन लोक चूड़ामणि, सदा रहो जयवन्त।

विघ्नहरण मंगलकरन, तुम्हें नमें नित 'संत' ॥१॥

हे तीन लोक के चूड़ामणि सिद्ध भगवन् ! आप सदा जयवंत रहें। आप विघ्नों का हरण करनेवाले और मंगल करनेवाले हैं। यह संत कवि या संतजन आपको सदा नमस्कार करते हैं।

सिर पर बालों का चूड़ा बनाकर उसे सजाने के लिए बेशकीमती मणि लगाये जाते हैं। तीन लोक के सर्वोच्च शिखर पर सिद्धशिला का चूड़ा है और सिद्ध भगवान उस सिद्धशिलारूपी चूड़ा में लगे मणि हैं।

इसप्रकार सिद्ध भगवान तीन लोक के चूड़ामणि हैं, सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं।

यद्यपि सिद्ध भगवान किसी का कुछ नहीं करते; तथापि उनका स्मरण करनेवालों के विघ्न समाप्त हो जाते हैं और उनका मंगल

स्वतः ही हो जाता है। इसकारण उन्हें विघ्नहरण और मंगलकरण कहते हैं।

इस सिद्धचक्र मण्डल विधान का समापन करते हुए सर्वान्त में दो अडिल्ल छन्द दिये गये हैं।

उनमें से पहला छन्द इसप्रकार है ह

(अडिल्ल)

पूरण मंगलरूप महा यह पाठ है,

सरस सुरुचि सुखकार भक्ति को ठाठ है।

शब्द-अर्थ में चूक होय तो हो कहीं,

थुतिवाचक सब शब्द-अर्थ यामें सही ॥१॥

भक्ति का है ठाठ जिसमें, ऐसा यह महा मंगलस्वरूप सरस, सुरुचि पूर्ण और सुख करनेवाला यह सिद्धचक्र महामण्डल विधान पूर्ण हो गया है। इसमें कहीं शब्दों की या अर्थों संबंधी कोई चूक हो गई हो तो भी कोई बात नहीं है; क्योंकि इसमें अन्ततः सभी शब्द और अर्थ स्तुति वाचक ही तो हैं।

कवि का कहना यह है कि इस सम्पूर्ण सिद्धचक्र विधान में जो शब्द लिखे गये हैं; वे सभी भगवान की स्तुति करनेवाले हैं और जो भाव प्रस्तुत किया गया है, वह भी स्तुति करनेरूप है। यदि शब्द और अर्थ में कहीं थोड़ा-बहुत स्खलन हो गया हो तो इससे क्या फरक पड़ता है; क्योंकि हमारी भावना तो भगवान की स्तुति करना ही रहा है।

दूसरा अडिल्ल छन्द इसप्रकार है ह

(अडिल्ल)

जिनगुणकरण आरंभ हास्य को धाम है,

वायस को नहीं सिंधु उतीरण काम है।

पै भक्तनि की रीति सनातन है यही,

क्षमा करो भगवंत शांति पूरणमही ॥२॥

सच्ची बात तो यह है कि जिसप्रकार महान विस्तारवाले गहरे

सागर को पार करना बायस (कौआ-कागला) का काम नहीं है; उसीप्रकार हमारे द्वारा सिद्ध भगवान के गुणों का वर्णन आरंभ करना ही हास्यापद है, हास्य का स्थान है। फिर भी भक्तों की यही सनातन रीति रही है कि वे जैसी भी टूटी-फूटी भक्ति बन पड़ती हैं, करते अवश्य हैं। हमने भी उसी रीति का निर्वाह किया है। हे भगवन् ! क्षमा करें और सम्पूर्ण पृथ्वी में शान्ति की स्थापना हो।

हे भगवन् ! हम आपकी स्तुति करने में सफल हुए हैं या नहीं; इससे क्या फरक पड़ता है; हमने तो अपनी शक्ति की सीमा में कोई कसर नहीं छोड़ी; फिर जो हुआ, सो हुआ। अन्त में तो यह समझ लीजिए कि हमने तो भक्तों की सनातन रीति का ही निर्वाह किया है।

अन्त में हम तो यही चाहते हैं कि पृथ्वी लोक में पूर्णतः शान्ति का वातावरण रहे। जो कुछ भी कमी रह गई हो, तदर्थ हम क्षमाप्रार्थी हैं। ●

आत्मा का ध्यान करने के लिए उसे जानना आवश्यक है। इसीप्रकार अपने आत्मा के दर्शन के लिए भी आत्मा का जानना आवश्यक है। इसप्रकार आत्मध्यान रूप चरित्र के लिए तथा आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शन के लिए आत्मा का जानना जरूरी है तथा आत्मज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान के लिए तो आत्मा का जानना आवश्यक है ही। **अन्ततः यही निष्कर्ष निकला कि धर्म की साधना के लिए एकमात्र निज भगवान आत्मा का जानना ही सार्थक है।**

सुनकर नहीं, पढ़कर नहीं; आत्मा को प्रत्यक्ष अनुभूतिपूर्वक साक्षात् जानना ही आत्मज्ञान है और इसीप्रकार जानते रहना ही आत्मध्यान है। इसप्रकार का आत्मज्ञान सम्यग्ज्ञान है और इसीप्रकार का आत्मध्यान सम्यक्चरित्र है। जब ऐसा आत्मज्ञान और आत्म-ध्यान होता है तो उसी समय आत्म प्रतीति भी सहज हो जाती है, आत्मा में अपनापन भी सहज आ जाता है, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन भी उसी समय होता है; सबकुछ एकसाथ ही उत्पन्न होता है और सबका मिलाकर एक नाम आत्मानुभूति है।

ह्व आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२१

सिद्धभक्ति

(कविवर संतलालजी कृत सिद्धचक्र विधान की
पूजन की जयमालाओं का विवेचन)

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डी.लिट्

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२ ०१५

फोन : ०१४१-२७०७४५८, २७०५५८१

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : ३ हजार

(११ अप्रैल २०१३ ई.)

नववर्ष : चैत्र सुदी एकम्, वि. सं. २०७०

मूल्य : १० रुपये

टाइपसेटिंग :

त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,

ए-४, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :

श्री प्रिन्टर्स

मालवीय नगर, जयपुर

क्षयोपशम बहुत है

पण्डित हुकमचन्द के बारे में तो हमने कहा था कि उसका क्षयोपशम बहुत है, बहुत है। वर्तमान तत्त्व की प्रभावना में उसका बड़ा हाथ है, स्वभाव का भी सरल है। अच्छा मिल गया, टोडरमल स्मारक को बहुत अच्छा मिल गया। गोदीका के भाग्य से मिल गया। गोदीका पुण्यशाली है न, सो मिल गया। तत्त्व की बारीक से बारीक बात पकड़ लेता है, पण्डित हुकमचन्द बहुत ही अच्छा है।

हू आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी

समयसार का शिखर पुरुष

समयसार वाचना में आपके समयसार व्याख्यान सुनकर हृदय बहुत ही गद्गद् हो गया और उससे बहुत धर्मलाभ भी प्राप्त हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैनदर्शन का मर्म 'समयसार' में भरा है और 'समयसार' का व्याख्याता आज आपसे बढकर दूसरा नहीं है।

आपको इसका बहुत गूढ-गम्भीर ज्ञान भी है और उसके प्रतिपादन की सुन्दर शैली भी आपके पास है।

यदि आपको 'समयसार का शिखर पुरुष' भी आज की तिथि में घोषित किया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

आज के समय में जब एक-दो बच्चों को भी पालना (संस्कारित करना) बहुत कठिन है, आपने सैकड़ों बालकों को जैनदर्शन का विद्वान बनाकर समाज की महती सेवा की है, जो इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखी जाती रहेगी।

आप चिरायु हों, स्वस्थ रहें और जैनधर्म की महान प्रभावना करते रहें तथा सम्पूर्ण समाज भी एकजुट होकर आपके प्रवचनों को बड़ी सद्भावना से सुनकर लाभान्वित होती रहे हू यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। आशीर्वाद। हू आचार्य विद्यानंद मुनि

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००
७. समयसार का सार	३०.००
८. गाथा समयसार	१०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००
१३. प्रवचनसार का सार	३०.००
१४. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००
१५-१६. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००
१७. छहढाला का सार	१५.००
१८. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००
१९. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	८.००
२०. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वाद्ध)	२०.००
२१. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
२२. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००
२३. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००
२४. तीर्थकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२०.००
२५. धर्म के दशलक्षण	२०.००
२६. क्रमबद्धपर्याय	२०.००
२७. बिखरे मोती	१६.००
२८. सत्य की खोज	२५.००
२९. अध्यात्म नवनीत	१५.००
३०. आप कुछ भी कहो	१२.००
३१. आत्मा ही है शरण	१५.००
३२. सुक्ति-सुधा	१८.००
३३. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००
३४. दृष्टि का विषय	१०.००
३५. गागर में सागर	७.००
३६. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००
३७. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	११.००
३८. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००
३९. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००
४०. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
४१. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१५.००
४२. मैं कौन हूँ	७.००
४३. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००
४४. निमित्तोपादान	३.५०
४५. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
४६. मैं स्वयं भगवान हूँ	४.००
४७. ध्यान का स्वरूप	४.००
४८. रीति-नीति	३.००

४९. शाकाहार	३.००
५०. भगवान ऋषभदेव	४.००
५१. तीर्थकर भगवान महावीर	३.००
५२. चैतन्य चमत्कार	४.००
५३. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
५४. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
५५. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
५६. अनेकान्त और स्याद्वाद	२.००
५७. शाश्वत तीर्थधाम सम्मोदशिखर	५.००
५८. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
५९. जिनवरस्य नयचक्रम	१०.००
६०. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	७.००
६१. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
६२. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
६३. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
६४. समयसार पद्यानुवाद	३.००
६५. योगसार पद्यानुवाद	१.००
६६. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
६७. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
६८. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
६९. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
७०. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
७१. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
७२. सिद्धभक्ति	१०.००
७३. अर्चना जेबी	१.५०
७४. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
७५. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
७६-७७. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	६.००
७८-८०. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१३.००
८१-८२. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	११.००
८३. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्व अरुणकुमार जैन	१२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बंसल	२५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
प्रकाशनाधीन	
५. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्व नीतू चौधरी	
६. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्व सीमा जैन	
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्व शिखरचन्द जैन	
८. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्व ममता गुसा	

प्रकाशकीय

‘सिद्धभक्ति’ तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम रचना है, जिसका प्रकाशन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के माध्यम से करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने कविवर पण्डित सन्तलालजी कृत ‘सिद्धचक्र विधान’ की जयमालाओं का मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ. भारिल्लजी द्वारा अब तक छोटी-बड़ी ८० पुस्तकों का प्रणयन किया गया है, जिनके माध्यम से आपने जैन अध्यात्म को नई ऊँचाईयाँ प्रदान की हैं। सभी कृतियाँ एक से बढ़कर एक बेजोड़ हैं। आप जैसे कलम के धनी व्यक्तित्व के विषय में यदि यह कहा जाए हूँ ‘आप जैसा कोई नहीं’ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आप समाज के उन प्रतिभाशाली विद्वानों में अग्रगण्य हैं, जो समाज में सर्वाधिक पढ़े एवं सुने जाते हैं। आप न केवल लोकप्रिय प्रवचनकार एवं कुशल अध्यापक ही हैं; अपितु सिद्धहस्त लेखक, कुशल कथाकार, सफल सम्पादक एवं आध्यात्मिक कवि भी हैं।

शुद्धाम्नाय के प्रबल समर्थक आचार्य श्री धर्मभूषणजी मुनिराज ने अपना मन्तव्य प्रगट करते हुए आपके विषय में लिखा है हूँ

“मैंने डॉ. भारिल्ल की समय-समय पर प्रकाशित विभिन्न कृतियों को पढ़ा है; जिसमें समयसार अनुशीलन, परमभावप्रकाशक नयचक्र, कुंदकुंद शतक, बारहभावना, बारहभावना : एक अनुशीलन, क्रमबद्धपर्याय आदि-आदि हैं; जिससे यह अनुभव में आया है कि जिनवाणी के लेखन, पठन, मनन, स्वाध्याय में आपका योगदान अनुपम है।

आप एक सच्चे आध्यात्मिक पुरुष हैं।”

साहित्य व समाज के प्रत्येक क्षेत्र में आपकी प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है। तत्त्वप्रचार की गतिविधियों को निरन्तरता प्रदान करनेवाली आपकी नित नई सूझ-बूझ, अद्भुत प्रशासनिक क्षमता एवं पैनी पकड़ का ही परिणाम है कि आज जयपुर आध्यात्मिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

आपने जहाँ एक ओर ‘समयसार अनुशीलन’, ‘क्रमबद्धपर्याय’, ‘परमभावप्रकाशक नयचक्र’, ‘प्रवचनसार अनुशीलन’, ‘नियमसार अनुशीलन’, जैसे गूढ़ दार्शनिक विषयों को स्पष्ट करनेवाली कृतियाँ लिखी हैं

तो वहीं दूसरी ओर सत्य की खोज, तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, मैं कौन हूँ, आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम, पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व, आप कुछ भी कहो, चिन्तन की गहराईयाँ, सूक्ति सुधा, बिखरे मोती, समयसार का सार, प्रवचनसार का सार, मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार तथा छहढाला का सार जैसी अद्वितीय कृतियाँ भी लिखी हैं।

पश्चाताप, कुन्दकुन्द शतक, शुद्धात्म शतक तथा बारह भावना के अतिरिक्त समयसार, योगसार, प्रवचनसार, नियमसार, द्रव्यसंग्रह, अष्टपाहुड़, समयसार कलश पद्यानुवाद, नियमसार पद्यानुवाद आपकी पद्यात्मक कृतियाँ हैं। ध्यान का स्वरूप, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, रक्षाबन्धन एवं दीपावली, गोम्मटेश्वर बाहुबली, चैतन्य चमत्कार, रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का, भगवान ऋषभदेव, शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर जैसी लोकप्रिय कृतियों के माध्यम से आपने प्रकाशन के सारे रिकार्ड तोड़ दिए हैं। उपरोक्त कृतियों के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं, कुछ कृतियाँ विभिन्न भाषाओं में भी प्रकाशित हुई हैं, यदि सभी का योग किया जाए तो ४४ लाख से भी अधिक की संख्या हो जाती है आपके प्रकाशन की; जो एक रिकार्ड है।

कविवर संतलालजी की भावपूर्ण रचना सिद्धचक्र विधान में आठ जयमालाएँ हैं, जो सभी सरल माधुर्य गुण युक्त हैं। छन्द और अलंकारों से ओतप्रोत भक्ति रस की इस अद्भुत रचना से मानो सिद्ध भगवन्तों से ही साक्षात्कार हो रहा हो। ऐसी श्रेष्ठ रचना की जयमाला पर डॉ. भारिल्ल की पैनी कलम ने भक्तिगंगा को जन-जन तक प्रवाहित करने का प्रयास किया है। आशा है आपके मन में भक्ति की हिलोरें अवश्य उठेंगी।

इस उपयोगी कृति के लिए डॉ. भारिल्लजी का जितना उपकार माना जाए कम है। प्रकाशन व्यवस्था एवं मोहक आवरण के लिए अखिल बंसल तथा टाइपसैटिंग के लिए दिनेश शास्त्री का विशेष आभार।

आप सभी भक्तिपूर्वक सिद्धों का गुणगान करते हुए आत्मोत्थान की दिशा में आगे बढ़ें हूँ ऐसी पवित्र भावना है।

दि. ८ अप्रैल २०१३ ई.

हूँ ब्र. यशपाल जैन एम.ए.

प्रकाशनमंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ क्र.
१.	पृष्ठभूमि	१-३
२.	पहली पूजन की जयमाला	४-१६
३.	दूसरी पूजन की जयमाला	१७-३२
४.	तीसरी पूजन की जयमाला	३३-४४
५.	चौथी पूजन की जयमाला	४५-५९
६.	पाँचवीं पूजन की जयमाला	६०-७१
७.	छठवीं पूजन की जयमाला	७२-८३
८.	सातवीं पूजन की जयमाला	८४-९४
९.	आठवीं पूजन की जयमाला	९५-११२

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1. गुप्तदान : हस्ते श्रीमती गुणमाला भारिल्ल, जयपुर	2,100.00
2. श्री पवनकुमारजी जैन, 'मङ्गलायतन', अलीगढ़	2,100.00
3. श्रीमान् ताराचन्दजी गोधा, जयपुर	1,100.00
4. श्रीमती रूबी जैन ध.प. श्री नीलेश जैन, दिल्ली	1,100.00
5. श्रीमान् शान्तिलालजी जैन, अलवर	1,100.00
6. श्रीमती अमृतबेन बेलजीभाई शाह, मुम्बई	1,100.00
7. श्रीमती शारदा जैन, ध.प. श्री संजयकुमार जैन, दिल्ली	1,100.00
8. श्रीमती वीणा सतीशकुमारजी पाटोदी, इन्दौर	1,100.00
9. श्री रूपेश कापड़िया, टोरंटो	1,100.00
10. श्रीमती केलादेवी ध.प. अल्फतरायजी जैन, बागपत	1,100.00
11. श्री ए.के. बगड़ा, जयपुर	1,100.00
12. श्रीमती लक्ष्मी जैन ध.प. श्री पी.सी. जैन, दिल्ली	1,100.00
13. श्री रौनक जैन, फिरोजाबाद	1,000.00
14. श्रीमती निर्मला ध.प. सुशीलजी जैन, जयपुर	502.00
15. श्रीमती गुणमाला प्रकाशचन्द बोहरा, भोपाल	501.00
16. श्री रमेशचन्द रिमाशू जैन, लाम्बाखोह	501.00
17. पण्डित अजितकुमारजी, फिरोजाबाद	501.00
18. श्री ओमप्रकाश विजयवर्गीय, ग्वालियर	500.00
19. श्रीमान् सुरेशचन्दजी जयपुर	500.00
20. श्रीमान् अशोककुमारजी झांझरी, जयपुर	500.00
21. श्रीमान् ताराचन्दजी सौगानी, जयपुर	500.00
22. श्रीमान् जिनेन्द्रकुमार प्रांजल जैन, अलवर	500.00
23. श्री वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल, बापूनगर, जयपुर	500.00
24. पाण्डे ऋषभकुमार सोनूशास्त्री, फिरोजाबाद	251.00
25. श्री महेशचन्दजी, फिरोजाबाद	251.00
26. श्रीमती इन्दू जैन, मालपुरावाले	251.00
27. गुप्तदान	202.00
28. श्री रमन जैन, मौथ	201.00
29. स्व. श्री प्रेमचन्द संघी की स्मृति में श्रीमती गुलाबदेवी संघी	101.00
30. श्रीमती शशिप्रभा जैन, जयपुर	101.00
31. श्रीमती रेखा जैन, लाम्बाखोह	101.00

कुल योग : 22,664.00